ISSN: 2583-1860

शोध-चिंतन पत्रिका

विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

संपादक
डॉ. रीतामणि वैश्य

http://shodhchintanpatrika.neglimpse.com/

वर्ष-3, अंक-4; जनवरी-जून, 2022

शोध-चिंतन पत्रिका

विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

संपादक

डॉ. रीतामणि वैश्य

E-ISSN: 2583-1860

वर्ष: 3, अंक: 4; जनवरी-जून, 2022

प्रकाशक: NEGLIMPSE

E-ISSN: 2583-1860

संपर्क-सूत्र:

ई-मेइल: neglimpse@gmail.com
shodhchintan@gmail.com

मोबाइल नं. 7002272818

संरक्षक

डॉ. किरण हाजरिका
सदस्य, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

डॉ. अमूल्य वर्मण
पूर्व-विभागाध्यक्ष तथा सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, कॉटन कॉलेज

परामर्श मंडल

प्रो. एइच सुबदनी देवी
हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय

प्रो. दिनेश कुमार चौबे
हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पहाड़ीय विश्वविद्यालय

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. नारायण चंद्र तालुकदार
पूर्व-विभागाध्यक्ष तथा सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, कॉटन महाविद्यालय

डॉ. अच्युत शर्मा
भूतपूर्व सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र
हिन्दी विभाग, विश्व भारती विश्वविद्यालय

डॉ. पवन कुमार
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, गवर्मेंट डिग्री कॉलेज ऑफ भैंसा

डॉ. माक्सीम देमचेन्को
सहयोगी अध्यापक, मॉस्को स्टेट लिंग्विस्टिक
विश्वविद्यालय, मॉस्को (रूस)

प्रो. निरंजन कुमार
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. राहुल मिश्र
प्राध्यापक, हिंदी
केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान (मानद विश्वविद्यालय)

डॉ. गोलोक चंद्र डेका
सहायक अध्यापक
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

डॉ. लेखा एम.
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, एन एस एस हिंदू महाविद्यालय

संपादक

डॉ. रीतामणि वैश्य

सहयोगी अध्यापक, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, असम

rita1@gauhati.ac.in

9101452787, 9435116133

Profile Link: https://www.gauhati.ac.in/academic/arts/hindi

संपादक मंडल

प्रो. जय कौशल

अध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग

असम विश्वविद्यालय (दीफू परिसर), असम

jai.kaushal@aus.ac.in

9612091397

डॉ. मिलन रानी जमातिया

सहयोगी अध्यापक, हिंदी विभाग

त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला,

त्रिपुरा वेस्ट, 799022

milanrani08@tripurauniv.ac.in

8974009245

डॉ. चुकी भूटिया

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग, काज़ीरोड,

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम, 737102

cbhutia01@cus.ac.in

9064224852

प्रो. पूनम कुमारी

हिंदी/भारतीय भाषा केंद्र, जे. एन. यू.

punamkumari@mail.jnu.ac.in

डॉ. प्रीति बैश्य

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग

प्रागज्योतिष महाविद्यालय, गुवाहाटी, 781009

pritibaishya@pragjyotishcollege.ac.in

9678885119

डॉ॰ फिल्मेका मारबानियांग

सहायक अध्यापक

हिंदी विभाग, सेंट एनथोनीज़ कॉलेज

शिलांग, मेघालय

fmarbaniang12@anthonys.ac.in

9436302106

डॉ॰ जोरम आनिया ताना

सहयोगी अध्यापक

हिंदी विभाग, देरानातुंग गवर्मेंट कॉलेज

इटानगर, अरुणाचल प्रदेश

aniya@dngc.ac.in

7005147047

✍ संपादकीय

नयी शिक्षा नीति,2020 और भारतीय ज्ञान परंपरा

सुदीर्घ 34 साल बाद 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति,2020' एक्कीसवीं सदी के भारतवर्ष की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में सामने आयी। शिक्षा नीति देश के बच्चों की शिक्षा प्रारम्भ करने की उम्र, शिक्षा वर्षों की संख्या,पाठ्यक्रम का प्रारूप,शिक्षा का उद्देश्य आदि विषयों से संबद्ध विस्तृत दलील होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति किसी देश के अभियान और दृष्टि (Mission and Vision) की पहचान होती है, देश के भविष्य का नक्शा होती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में अब तक हमारे देश को कई आयोग और नीतियाँ मिलीं। प्रत्येक शिक्षा आयोग और नीति कुछ न कुछ नयेपन के साथ आती है। पर इस बार की यह नीति व्यापक बदलाव और वादों के साथ लायी गयी है। भारतीयकरण से शिक्षा का गुणगत उन्नयन तथा इसे सर्वजन सुलभ करना इस नीति का लक्ष्य है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में भारतीय तत्वों का अभाव मिलता है।इसका कारण भारत में कार्यान्वित मैकाले की शिक्षा पद्धति है। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के ऊपरी सदन (हाउस ऑफ लार्ड्स) के सदस्य लार्ड थोमस बैबिंगटन मैकाले द्वारा सन 1835 में भारत में भारतीय लोगों के अंग्रेजीकरण के उद्देश्य से एक शिक्षा पद्धति अपनायी गयी थी। इस पद्धति में पाठ्यक्रम कुछ इस प्रकार बनाया गया था कि यहाँ के शिक्षित युवक देखने में हिंदुस्तानी हों ,पर उनके मस्तिष्क पर अंग्रेजियत हाबी रहें।पश्चिमी सभ्यता एवं जीवन पद्धति के प्रति आकर्षण पैदा करने में मैकाले की शिक्षा नीति पूर्णतः सफल रही। नयी शिक्षा नीति में मैकाले की शिक्षा पद्धति का निराकरण कर सभी के लिए अपनी भाषा में शिक्षा,वंशानुगत वृत्तियों के प्रति आस्था,भारतीय मूल्यबोध की प्रतिष्ठा आदि से भारत को विश्वगुरु के रूप में अधिष्ठित करने का भरसक प्रयास किया गया है।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020' व्यापक संभावनाओं के साथ हमारे सामने पेश हुई है। आज की दुनिया बड़ी तेजी से आगे बढ़ती जा रही है और उस तेजी को पकड़ने के लिए भारत को प्रस्तुत करने की दिशा में नयी शिक्षा नीति सर्वाधिक प्रभावी पहल है। शिक्षा व्यवस्था किसी देश के विकास का मूलभूत आधार होती है,भविष्य की नींव होती है । जैसे गाड़ी के इंजन पर उसकी गति निर्भर करती है,उसी तरह देश की शिक्षा व्यवस्था पर उसकी प्रगति निर्भर होती है।

नयी शिक्षा नीति में शिक्षा को भारतीयकरण करने की पहल की गयी है। इस नीति के निर्माण में प्राचीन भारतीय उपादानों का भरपूर प्रयोग किया गया है। नीति में प्राचीन भारतीय ज्ञान,प्रज्ञा,

सत्य की परंपरा को आधार बनाने की बात की गयी है। इसी संदर्भ में नीति के 'परिचय' में कहा गया है कि प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में यह नीति तैयार की गयी है। ज्ञान,प्रज्ञा और सत्य की खोज भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य मानी गयी है। भारतीय परंपरा में शिक्षा के लक्ष्य हैं पूर्ण आत्म-ज्ञान और मुक्ति प्राप्ति। शिक्षा के क्षेत्र में तक्षशिला,नालांदा, विक्रमशिला और वल्लभी आदि विश्व-स्तरीय संस्थान हुआ करते थे। वहाँ अध्ययन के विविध क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के ऊंचे प्रतिमान स्थापित किये थे। इन संस्थानों में विभिन्न पृष्ठभूमि और देशों से आनेवाले विद्यार्थी और विद्वान लाभान्वित होते थे। चरक, सुश्रुत, आर्यभट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, चाणक्य, चक्रपाणि दत्ता,माधव, पाणिनी, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला,शंकरदेव, मैत्रेयी,गार्गी और थिरुवल्लुवर जैसे अनेकों महान विद्वान इसी शिक्षा व्यवस्था के सफल परिणाम हैं। इन विद्वानों ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों में प्रामाणिक रूप से मौलिक योगदान किये।

नयी शिक्षा नीति में यह स्पष्ट है कि यह नीति प्राचीन मूल्यों पर प्रतिष्ठित है और नीति में प्राचीन भारतीय शिक्षा के पुनरुत्थान और कार्यान्वयन पर महत्व दिया गया है। प्राचीन काल में भारत ज्ञान के विविध क्षेत्रों का महाभंडार हुआ करता था,वह विश्वगुरु हुआ करता था। भारत पर निरंतर हुए आक्रमणों ने उसके ज्ञान,गरिमा छीन लिये। आक्रांताओं को भारत पर अधिकार जमाये रखने के लिए भारतीय शिक्षा व्यवस्था की कमर तोड़ना जरूरी था। इसी का परिणाम है कि उच्च स्तरीय संस्थान नष्ट कर दिये गये, पुस्तकालय जलाये गये, संपद लूट लिये गये और आक्रांताओं के सुविधानुसार शिक्षा व्यवस्था की नींव डाली गयी और उसका कार्यान्वयन किया गया। समय बीतता गया, लोग गुजरते गये , घटनाएँ कुछ भूली गयीं, कुछ इतिहास के पन्नों में सही-गलत तरीकों से लिखी गयीं। भारत को विश्वगुरु के स्थान से उतारा गया और उसे दूसरे देशों पर निर्भर करने की नौबत आ गयी।

नयी शिक्षा नीति में प्राचीन भारतीय उपादानों का संधान कर युगसापेक्ष पुन:प्रयोग की योजना बनायी गयी है। हमारे महान चिंतकों के ज्ञान,दर्शन ,सृष्टि अब हमारी शिक्षा के अंग बनाये जायेंगे। जीवन के आवश्यक विषयों को शिक्षा के अंग के रूप में ग्रहण करने की योजना की गयी है। समग्र और बहु-विषयक शिक्षा की प्रेरणा से विद्यार्थियों की बौद्धिक,सौंदर्यात्मक, सामाजिक, शारीरिक, भावात्मक तथा नैतिक क्षमताओं का सामग्रिक विकास की संभावना राष्ट्रीय शिक्षा नीति,2020 में मिलती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में नयी शिक्षा नीति,2020 की घोषणा हुई है। इस शिक्षा नीति में प्राचीन भारतीय परंपरा के पुनरुत्थान पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम बनाये जा रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति,2020 का लक्ष्य विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति और सभ्यता से शिक्षित करना है । अर्थात पाठ्यक्रम में प्राचीन भारत के ज्ञान का संयोजन हों। पाठ्यक्रम में भारतीय संदर्भ के साथ-साथ स्थानीय संदर्भ भी शामिल हों, जिसके अंतर्गत संस्कृति,परंपरा, विरासत,रीति-रिवाज,भाषा, दर्शन,भूगोल, प्राचीन और समकालीन ज्ञान आदि सब शामिल हों। शिक्षा से व्यक्तिगत रोजगार के साथ-साथ खुशनुमा, सामंजस्यपूर्ण, सुसंस्कृत,उत्पादक, अभिनव, प्रगतिशील और समृद्ध राष्ट्र का निर्माण हो सकें। 64 कलाओं के अंतर्गत जीवन में आवश्यक समस्त कौशलों को ग्रहण किया जाएँ। आदिवासी और लुप्तप्राय भाषाओं का संरक्षण एवं संवर्धन हों।

नयी शिक्षा नीति,2020 में कहा गया है कि प्राचीन काल से ही विश्व में भारतीय संस्कृति और दर्शन का बड़ा प्रभाव रहा। वैश्विक महत्व की समृद्ध विरासत को आनेवाली पीढ़ियों के लिए न संरक्षित रखने के साथ-साथ हमारी शिक्षा व्यवस्था द्वारा उस पर शोध कार्य करने की भी आवश्यकता है।वर्तमान सारे विश्व में नये-नये विषयों पर शोध हो रहे हैं। भारत में और भारत के बाहर भी भारतीय भाषा, साहित्य, संस्कृति,समाज, विज्ञान आदि पर अनेक शोध कर्म चल रहे हैं । भारत की प्रमुख भाषा हिन्दी को भी शोध का एक व्यापक मंच मिला है। एक ओर हिन्दी की पत्रिकाओं में शोधालेखों का महत्व बढ़ा है, तो दूसरी ओर हिन्दी की कई शोध पत्रिकाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। युगीन मांग की ओर ध्यान देते हुए कुछ पत्रिकाएँ ऑनलाइन निकलती हैं। 'शोध-चिंतन पत्रिका' ऐसी ही एक पत्रिका है। इस अंक में भी पिछले अंकों की तरह कुछ अछूते विषयों को समेटा गया है । लेखकों और पाठकों के प्रति शुभेच्छा के साथ 'शोध-चिंतन पत्रिका' का यह चौथा अंक आप सबके सामने प्रस्तुत है।

सादर

डॉ. रीतामणि वैश्य
संपादक
शोध-चिंतन पत्रिका
वर्ष: 3, अंक : 4; जनवरी-जून, 2022

इस अंक में...

	आलेख	नाम	पृष्ठ संख्या
1	महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में उत्तर औपनिवेशिक भारतीय नारी	डॉ. अनूषा निल्मिणी सल्वतुर	01-09
2	हिन्दी डायस्पोरा में अस्मिता और भाषा	डॉ. दुर्गा प्रसाद सिंह	10-21
3	'बाजार में रामधन': एक अंतर्पाठ	प्रियंका कलिता	22-33
4	'करवट' और 'ढाई घर' में चित्रित अंग्रेजकालीन भारत	डॉ॰ संजीव मण्डल	34-53
5	कामाख्या शक्तिपीठ और लोक-विश्वास	डॉ. प्रीति बैश्य	54-62
6	आधुनिक हिंदी काव्य में राम	पूजा बरुवा	63-73
7	जनजातीय कला एवं साहित्य	डॉ. अमिता	74-82
8	कबीर का आध्यात्म और उनका दर्शन	डॉ. किरण हजारिका	83-90
9	धर्मवीर भारती-कृत 'कनुप्रिया' में मिथकीय योजना	उदित्त तालुकदार	91-100
10	'रसीदी टिकट' और 'आधा लेखा दस्तावेज' का तुलनात्मक अध्ययन	हिरण वैश्य	101-116
11	शंकरदेव पर आधारित उपन्यास 'धन्य नर तनु भाल': एक अवलोकन	यीशुरानी चाङमाइ	117-126
12	कवि शमशेर की काव्य-भाषा	आशीष जायसवाल	127-134
13	प्रेमचंद की पत्रकारिता और दलितोद्धार का प्रश्न	अहमद रजा	135-147

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 01-09

महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में उत्तर औपनिवेशिक भारतीय नारी

✍ डॉ. अनूषा निल्मिणी सल्वतुर

शोध-सार :

साहित्य मानव जीवन के गत्यात्मक सौन्दर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है। अतः यह निर्विवाद है कि साहित्य और मानव जीवन का परस्पर संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। मानव जीवन की विविध आयामीय यात्राओं में अनेक प्रकार के जीवन मूल्यों का निर्माता भी मानव है। जहाँ साहित्य, समाज का दर्पण है, वहाँ वह मानव निर्मित जीवन-मूल्यों का संवाहक भी है। इसमें संदेह नहीं कि साहित्य का केन्द्रबिंदु मानव है और मानव जीवन के यथार्थ चित्रण को प्रस्तुत करने वाला औपन्यासिक साहित्य ही प्रस्तुत अध्ययन का विषय है। यह विशेषतः उत्तर औपनिवेशिक प्रमुख महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में चित्रित भारतीय नारी पर केन्द्रित है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में नारी के अधिकारों के प्रति जागृति और नारी चेतना तथा संघर्षों को सजीव ढंग से चित्रित करनेवाली महिला उपन्यासकारों में से उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे तथा मैत्रेयी पुष्पा को चुन लिया गया है और उनके बहुचर्चित उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्रों के जीवन ही अध्ययन के केंद्रीय विषय हैं।

बीज शब्द : *उपन्यास, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य, महिला उपन्यासकार, भारतीय नारी*

प्रस्तावना :

सदियों से ही भारतीय समाज में नारी की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय नारी के ऐतिहासिक तत्त्वों के अनुसार प्राचीन काल में पुरुषों के साथ बराबरी की स्थिति से लेकर मध्ययुगीन परिवेश में निम्न स्तरीय जीवन और आधुनिक काल में कई सुधारकों द्वारा समान अधिकारों को बढ़ावा दिये जाने तक, भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है।

भारत के प्राचीन ग्रंथों में नारी को पूज्य, देवतुल्य माना गया है। भारतीय धारणा है कि देव शक्तियाँ वहीं पर विश्वास रखती हैं जहाँ पर समस्त नारी जाति को प्रतिष्ठा व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। उनकी और भी धारणा है कि नारी शक्ति के बिना इस संसार में मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता, अर्थात् नारी शक्ति को इस सृष्टि का मूल कहा जाता है। ऐसी मान्यता भी है कि जिस घर में नारी का आदर-सम्मान नहीं होता, वहाँ पर लक्ष्मी का निवास नहीं होता। भारत में पति-पत्नी को लेकर भी यह मत रहा है कि दोनों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक आदि सभी आदर्श अभिन्न हैं और दम्पतियों का अभिन्न तथा प्रेमपूर्ण जीवन ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति का आधार माना गया है। वस्तुतः यह कह सकते हैं कि मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र नारी के बिना अपूर्ण है।

अतः यह कोई विवादास्पद बात नहीं कि मनुष्य के जीवन में पुरुष की तरह नारी का भी अपना महत्व है;क्योंकि समाज के निर्माण में वह भी अपनी सहभागिता प्रदान करती चली आ रही है। अपनी विविध भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए 'नारी', समाज का अभिन्न हिस्सा बन जाती है। नारी माता है, पत्नी है, दासी है। उसमें करुणा और ममता हैं। वह जननी है, प्रकृति है। पत्नी के रूप में पति की सहायिका, बहन के रूप में भाई की रक्षिका, सास के रूप में दया और माँ के रूप में ममता की मूर्ति है। यही भारतीय नारी का स्वरूप है।

विश्लेषण:

आधुनिक हिंदी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार जैनेन्द्र कुमार ने 'परख' नामक अपने उपन्यास में नारी की जो परिभाषा दी है वह अत्यंत सही मालूम पड़ती है। वास्तव में उसे नारी पर दी गयी परिभाषा को विश्व-व्यापी परिभाषा कहें, तो उसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। जैनेंद्र कुमार द्वारा की गई परिभाषा कुछ इस प्रकार है-

> स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है, घर को, कुटुम्ब को बनाती, जाति और देश को भी, मैं कहता हूँ, स्त्री ही बनाती है। फिर उन्हें बिगाड़ती भी वही है। आनन्द भी वही, कलह

> भी, ठहराव भी और बहाव भी, दूध भी और खून भी, रोटी भी और स्कीमें और फिर अपनी मरम्मत और श्रेष्ठता भी, सबकुछ स्त्री ही बनाती है। धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फैशन की जड़ भी वही है। बात क्यों बढ़ाओ, एक शब्द में कहो, दुनिया स्त्री पर टिकी है। (कुमार 2015: 44)

दूसरी ओर हम यह कह सकते हैं कि दुनिया भर के विचारकों की राय में बहुधार्मिकता, बहुजातीयता, बहुभाषिकता तथा बहुसंस्कृति से युक्त भारतीय समाज में 'नारी' एक स्वतंत्र इकाई तथा स्वतंत्र अस्तित्ववाली के रूप में प्रतिष्ठित है।

यह सर्वविदित है कि प्रायः सभी साहित्यकारों ने नारी को अपने साहित्य की अभिव्यक्ति का साधन बनाया तथा परिवेश एवं संवेदना के अनुरूप उसके विविध रूपों का चित्रण भी किया है। फलतः साहित्य के माध्यम से नारी के स्वत्व की पहचान को अभिव्यक्ति मिली। साथ-साथ जहाँ नारी को, साहित्य की अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया, वहाँ वह स्वयं भी साहित्य-रचना की ओर अग्रसर हुई। परिणामतः उत्तर औपनिवेशिक या स्वातंत्र्योत्तर युग में बदलते परिवेश के अनुरूप ही लेखिकाओं के लेखकीय संसार का आरंभ हुआ।

विचारकों के कथनानुसार हिंदी कथा साहित्य के प्रेमचंद युग के आरंभ तक स्त्रियों पर हुए नैतिक बंधनों के प्रभाव के कारण उनका साहित्य परिमाण एवं कथा-शिल्प दोनों दृष्टियों से त्रृटिपूर्ण था। लेकिन स्वतंत्रता के बाद सामाजिक रूढ़ियों का विरोध, नारी त्रासदी की गहन अनुभूति, प्रेम, परिवार, दाम्पत्य आदि जीवन के विभिन्न पहलुओं में नारी के साथ हो रहे अन्याय, महिलाओं पर होनेवाले शारीरिक और मानसिक अत्याचारों की यथार्थता आदि को लेकर महिला कथाकारों ने जिन उपन्यासों का प्रणयन किया है, उन्हें हिंदी साहित्य जगत में जीवन्त दस्तावेज़ के रूप में ही मान्यता प्राप्त है। विशेषतः विचारकों में यही मान्यता है कि आधुनिक काल में हिंदी उपन्यास क्षेत्र में न केवल महिला उपन्यासकारों की संख्या में वृद्धि हुई, अपितु उनके साहित्य में नारी जीवन को ही पूरी क्षमता और

वास्तविकता के साथ चित्रित किया जाने भी लगा है। स्त्री-लेखन पर राजेंद्र भट्ट द्वारा संपादित 'आजकल' पत्रिका में प्रकाशित "नारी चेतना के विविध पक्ष और कथा साहित्य: चंद्रकांता" शीर्षक आलेख की गई निम्नोक्त टिप्पणी विचारणीय है-

> ...विपुल मात्रा में रचा जा रहा स्त्री-लेखन इस बात का प्रमाण है कि आज की नारी बदल रहे समय, समाज और अनेक विद्रूपों, चुनौतियों के प्रति सजग-सचेत है। जहाँ देह-मुक्ति की आवाज़ उठी है, वही स्त्री-पुरुष संबंधों में मैत्री और सौहार्द के लिए संघर्ष भी है। स्त्री-शोषण, बलात्कार की समस्या, आतंकवाद से उपजे विस्थापन, ग्रामीण स्त्रियों की समस्याओं और स्वचेतना, रूढ़ियों-बेड़ियों और व्यवस्था की अड़चनों से भिड़ती आज की चेतना सम्पन्न लेखिकाएँ 'स्व' से 'पर' की यात्राएँ कर रही हैं। घरेलू से लेकर वैवाहिक समस्याओं के प्रति सचेत लेखिकाएँ अपनी समृद्ध सोच से साहित्य में अपनी भागीदारी निभा रही हैं। अपने भीतर झाँककर आत्म मंथन भी करती है कि इस मूल्य खिन्न समय में वह कौन-सी स्त्री बनना चाहती है? उसके सामने नयी चुनौतियाँ तो हैं ही।...(भट्ट 2014:23)

इन्हीं चुनौतियों का सामना करते हुए विशेष रूप से स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाओं ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया है। उन्होंने एक ओर जहाँ सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा विशुद्ध रूप से मानवीय धरातल पर की है, वही दूसरी ओर पूर्वयुगीन जर्जर, रूढ़िग्रस्त मूल्यों का खुले रूप में बहिष्कार भी किया है।

महिला उपन्यासकारों के उपन्यास प्रायः नारी जीवन, स्त्री-पुरुष संबंधों, आधुनिक नारी की समस्याओं से जुड़े हुए हैं। इनका लेखन नारी जगत को बेहतर बनाने का प्रशंसनीय प्रयास है। भारतीय समाज की स्थिति एवं परिवेश में एक नारी की स्थिति व उसके संघर्षमय जीवन की दयनीय स्थिति का चित्रण कर उन्होंने नवीन मूल्यों की स्थापना की है।

यह सर्वविदित है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया। वस्तुतः यह नारी-नव जागरण का दूसरा चरण कहलाता है। फलतः भारतीय नारी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक पक्षपातों से मुक्त हुई और अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्ष करने लगी। विचारकों के कथनानुसार बीसवीं शताब्दी के अंत में यह संघर्ष तेज़ हो गया तथा प्रबुद्ध महिला लेखिकाओं ने नारी पीड़ा और नारी अस्मिता को अपनी रचनाओं में गंभीरता से चित्रित किया। आज के भौतिकवादी युग की दौड़ में सर्वाधिक संघर्षशील जीव नारी ने हिंदी कथा साहित्य के प्रति किस प्रकार का योगदान दिया है, वह उर्मिला गुप्ता के निम्न कथन से स्पष्ट परिलक्षित होता है-

> ...वस्तुतः लेखिकाओं ने हिंदी कथा साहित्य को अपनी संवेदनशील भावनाओं एवं जागरूक प्रतिभा का आश्रय देकर पर्याप्त गौरव किया है। नारी हृदय का जितना सफल चित्रण लेखिकाएँ कर सकी हैं, उतना लेखकों के कथा साहित्य में उपलब्ध नहीं है।...(गुप्ता 1978:363)

इस बात में कोई अत्युक्ति नहीं कि प्रस्तुत कथा लेखिकाओं (उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे तथा मैत्रेयी पुष्पा) ने दाम्पत्य जीवन की सभी दिशाओं का भ्रमण किया है और उसके विविध रूपों का चित्रांकन किया है। महिला होने के नाते स्त्री-वर्ग की कठिनाइयों को इन लेखिकाओं ने सहज स्वाभाविक रूप से पकड़ा है और निःसंकोच उसकी अभिव्यक्ति की है। सुखी दाम्पत्य जीवन की आभा से भी वे प्रभावित हैं, दूसरी ओर विभिन्न कारणों से नीरस बनते दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया जाना भी इन्होंने अपना कर्तव्य समझा है। आलोच्य छः लेखिकाओं में से केवल कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में 'धनवन्ती और गुरुदास' के सुखी दाम्पत्य जीवन की झलक देखने को मिलती है; क्योंकि वे एक संयुक्त परिवार के आदर्श पति-पत्नी हैं।

लेकिन, मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' में शकुन और उसके पति, कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' में मित्रो और उसके पति, मृदुला गर्ग के 'चित्तकोबरा' में मनु और उसके पति, मृणाल पांडे के

'रास्तों पर भटकते हुए' में मंजरी और उसके पति, मैत्रेयी पुष्पा के 'झूला नट' में शीलो और उसके पति- ये सब आधुनिक युग के पात्र हैं, जिन्होंने कभी सुखद दाम्पत्य जीवन का अनुभव नहीं किया।

आधुनिक युग में प्राचीन मूल्य तथा परम्पराओं का टूटना, परिवार में कुंठा, तलाक, टूटन एवं बिखराव बढ़ते जाना आदि का प्रभाव सहित्य पर बहुत गंभीर रूप से पड़ गया। फलतः उत्तर औपनिवेशिक लेखिकाओं ने भी इन बिखरती, टूटती स्थितियों के चित्र अवश्य खींचे हैं। अतः विवाह के संदर्भ में बदलते दृष्टिकोणों का चित्रण लेखिकाओं की रचनाओं में है। उन उपन्यासों में कुछ पात्र ऐसे हैं, जो वैवाहिक जीवन से संतुष्ट नहीं हैं और वे विवाह की प्रथा को ही समाप्त कर देना चाहते हैं। उषा प्रियंबदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा, 'आपका बंटी' की शकुन, 'मित्रो मरजानी' की मित्रो, 'चित्तकोबरा' की मनु, 'रास्तों पर भटकते हुए' की मंजरी, 'झूला नट' की शीलो- आदि उसके लिए जीवंत उदाहरण हैं। इनमें से कई, प्रथम विवाह से ऊबकर जब दूसरे विवाह कर लेती हैं, तब उससे भी संतुष्टि नहीं पातीं।

स्पष्ट है कि सदियों से परम्परा और रूढ़ियों की जंजीरों से जकड़ी महिलाओं की कलम, यौन-संबंधों, काम-चेष्टाओं, और रतिविषयक नारी-दृष्टि को अंकित करने में कार्यरत रही है। 'सेक्स' के बिना नारी की अपनी कोई वैयक्तिक पहचान नहीं है। इसे स्वर देने की चेष्टा कथा-लेखिकाओं ने की है।

लेखिकाओं ने विवाह-पूर्व तथा विवाहोपरांत काम-संबंधों का खुलकर चित्रण किया है और विशेष परिस्थितियों में उचित भी ठहराया है। विवाहोत्तर यौन-संबंधों के लिए 'चित्तकोबरा' के मनु और रिचर्ड का संबंध अधिक उपयुक्त उदाहरण प्रतीत होता है। लेखिका मृदुला गर्ग ने उन अवस्थाओं का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। इस उपन्यास में लेखिका ने निःसंकोच मनु और उसके पति के साथ हुए काम-संबंध का खुलकर चित्रण किया है। वहाँ पर लेखिका यह बताना चाहती हैं कि प्रेम के बिना शारीरिक संबंध केवल भोग-लिप्सा मात्र है, आत्मा का उत्पीड़न है; क्योंकि उन दोनों के काम-संबंध के चित्रण से एकदम पृथक रूप मनु और अपने प्रेमी रिचर्ड के काम-संबंधी चित्रण में देखने को मिलता है।

उसी के माध्यम से लेखिका यह भाव पाठकों के समक्ष रखना चाहती हैं कि सुखी वैवाहिक जीवन के लिए यौन भावनाओं की तृप्ति या संतुष्टि अनिवार्य है।

स्वातंत्र्योत्तर महिला लेखन में विषय चाहे दाम्पत्य जीवन रहा हो, प्रेम संबंध रहा हो या यौन-संबंध, प्रत्येक क्षेत्र में नारी की मुक्ति की आकांक्षा उभरकर सामने आयी है।

'आपका बंटी' की शकुन अपने विवाहोत्तर प्रेम संबंध के कारण अपने इकलौते बच्चे के जीवन से भी मुक्ति पाना चाहती है। वह अच्छी तरह जानती है कि ऐसा आचरण माता के लिए लायक नहीं है, लेकिन अपने प्रेम की मुक्ति हेतु बेटे को छोड़ देती है। अर्थात् आधुनिक नारी परम्परागत मान्यताओं को उसी स्थिति बनाये रखने के लिए अपने अस्तित्व का बलिदान देने को तैयार नहीं है। परिवार, पति,बच्चे वालों द्वारा बने बनाये ढाँचे से वह बाहर निकलने लगी है। शकुन इसके लिए एक जीवंत उदाहरण है।

'झूला नट' की शीलो पति-परित्यक्ता होते हुए भी जीवन से पराजित नहीं होती। अपनी शारीरिक भूख को मिटाने के लिए या मुक्ति के लिए अपने देवर को शिकार बना लेती है। अंत में अपने पति, सास और देवर को अपने वश कर लेती है। वास्तव में आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों में से शीलो ही एक ऐसी पात्र है जिसने नारी-मुक्ति के लिए बड़ी शक्तिशाली रूप दर्शाये हैं।

इन कथा लेखिकाओं ने मध्यवर्गीय भारतीय स्त्रियों के जीवन को पूर्णतः पकड़ने का प्रयत्न किया है। मध्यवर्ग के परिवार की नींव एक ओर उसकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर है, दूसरी ओर उस परिवार की केन्द्रबिंदु स्त्री ही है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो तथा 'झूला नट' की शीलो के अतिरिक्त अन्य सभी नारी पात्र शिक्षित, कामकाजी मध्यवर्ग की स्त्रियाँ हैं। फिर भी इन पढ़ी-लिखी नारियों की अपेक्षा शीलो और मित्रो अपने जीवन के अधिकारों के प्रति अधिक सजग हैं। अन्य जो पात्र हैं, वे अपने अधिकरों को लेकर लड़ती अवश्य हैं, फिर भी मध्यवर्गीय परिवेश में अपने आपको किसी-न-किसी तरह सँभालती हई भी दिखाई देती हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि नागरिक तथा ग्राम्य जीवन में उलझी हुई महिलाओं की आंतरिक तथा बाह्य मनःस्थितियों का यथार्थ पर्दाफाश करना आलोच्य लेखिकाओं का लक्ष्य रहा है। हिंदी उपन्यास साहित्य की इन आलोच्य लेखिकाओं ने आधुनिक नारी के आत्म-संघर्ष की कहानियाँ रचने में सफलता प्राप्त की है। भारतीय पारिवारिक और सामाजिक जीवन में घटित क्रांतिकारी परिवर्तनों से प्रभावित आधुनिक नारी अपनी नयी मानसिकता का प्रदर्शन करने लगी है। इसलिए आज की नारी अपनी स्थिति के प्रति सजग है। लेकिन व्यावहारिक जीवन में नारी आज भी पुरुष से भिन्न मानी जाती है। वहाँ भी वह शोषण की जंजीरों से बंधी है।

आज नारी-जागरण का युग है। अर्थात शताब्दियों से चले आने वाले शोषण के विरुद्ध लड़ने का साहस नारी को मिला है। नारी-मुक्ति आन्दोलन के प्रभाव से स्वयं अपने को दमन और शोषण से मुक्त करने की शक्ति उनमें पैदा हुई है। आज सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक क्षेत्रों में नारी को भी समान स्थान तथा अधिकार प्राप्त हो रहा है।

सदियों से पद-दलित नारी आज अपने पैरों पर खड़ी होने लगी है। घर-गृहस्थी सँभालने के अतिरिक्त उसका कार्य-क्षेत्र घर की चारदीवारी को लाँघकर विस्तृत फलक को ग्रहण करने लगा है। आधुनिक नारी ने जीवन को बड़ी गहनता से आत्मसात किया है और महिला उपन्यासकारों ने भी बड़ी कलात्मकता एवं सुन्दरता के साथ नारी मुक्ति को चित्रित किया है।

आधुनिक महिला उपन्यासकारों में से आलोच्य लेखिकाएँ, अपनी रचनाओं के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन लेखिकाओं के उपन्यासों का उद्देश्य नारी जीवन की समस्याओं का उद्घाटन करना है। उन्होंने नारी हृदय के मनोभावों, उनकी प्रतिक्रियाओं तथा उनकी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि का चित्रांकन एक कुशल चित्रकार की भाँति किया है।

ग्रंथ-सूची:

अग्रवाल, साधना. वर्तमान हिंदी महिला कथा-लेखन और दाम्पत्य जीवन. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1995.

अमरनाथ.नारी मुक्ति का संघर्ष. नोएडा:रेमाधन प्रकाशन, 2007.

कुमार, जैनेंद्र.परख.पंचम.नई दिल्ली:भारतीय ज्ञानपीठ, 2015.

खेतान, प्रभा.उपनिवेश में स्त्री. दिल्ली:वाणी प्रकाशन, 2006.

गुप्ता, उर्मिला. स्वातंत्रयोत्तर कथा लेखिकाएँ. नई दिल्ली: अनुराग प्रकाशन, 1978.

गर्ग, मृदुला.चित्तकोबरा.नई दिल्ली:नेशनल पेपरबैक्स, 2009.

पांडे, मृणाल.रास्तों पर भटकते हुए.नयी दिल्ली:राधा कृष्ण प्रकाशन, 2010.

प्रियंबदा,उषा. पचपन खंभे लाल दीवारें.प्रथम.दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,2009.

पुष्पा, मैत्रेयी.झूला नट. नयी दिल्ली:राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 2001.

भट्ट, राजेंद्र, संपा. आजकल: नारी चेतना के विविध पक्ष और कथा साहित्य: चंद्रकांता, मार्च 2014.

भंडारी, मन्नू.सम्पूर्ण उपन्यास.नयी दिल्ली:राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009.

सोबती, कृष्णा.मित्रो मरजानी.नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 2007.

संपर्क-सूत्र :
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
केलानिया विश्वविद्यालय, श्रीलंका
ई-मेइल: sanushanilmini@yahoo.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 10-21

हिन्दी डायस्पोरा में अस्मिता और भाषा

✍ डॉ. दुर्गा प्रसाद सिंह

शोध-सार:

यह आलेख भाषा संस्कृति और अस्मिता के दायरे में इसके भविष्य को समझने की कोशिश है। हिन्दी भाषा की अपनी एक संस्कृति है वह संस्कृति है इसकी भाव-प्रधानता। हिन्दी का नेरेटिव इसका गवाह है। जिन परम्पराओं से हिन्दी की संस्कृति बनी उसकी किस्सागोई पर गौर करने की जरूरत है। भारतीय परंपरा और दर्शन में दुःख और मृत्यु जैसी धारणाओं पर हजारों साल विमर्श चलता रहा है। इसके बावजूद हमारे क्लासिक हमेशा सुखांत थे। लोक कथा की परम्परा भारत और हिन्दी की संस्कृति की सबसे मुकम्मिल व्याख्या करती है। आज हमारे सिनेमा का नेरेटिव पूरी दुनिया को आकर्षित करता है। यही नहीं पश्चिम भारत की ओर एक उम्मीद और आशा से देखता है। वर्तमान समय में पारम्परिक ज्ञान और समझ के प्रति धारणाएँ बदल रही हैं।

बीज शब्द: *हिन्दी डायस्पोरा समाज, संस्कृति, भारत, लोक परंपरा*

प्रस्तावना :

डायस्पोरा की अस्मिता में संस्कृति और भाषा का अहम आयाम हैं। हिन्दी भाषा की अपनी एक संस्कृति है, वह है इसकी भाव प्रधानता। हिन्दी का नेरेटिव इसका गवाह है। जिन परम्पराओं से हिन्दी की संस्कृति बनी, उसकी किस्सागोई पर गौर करने की जरूरत है। भारतीय परंपरा और दर्शन में दुःख और मृत्यु जैसी धारणाओं पर हजारों साल विमर्श चलता रहा है। इसके बावजूद हमारे क्लासिक हमेशा सुखांत थे। लोक कथा की परम्परा भारत और हिन्दी की संस्कृति की सबसे मुकम्मिल व्याख्या करती है। आज हमारे सिनेमा का नेरेटिव पूरी दुनिया को आकर्षित करता है। यही नहीं पश्चिम भारत की ओर एक उम्मीद और आशा से देखता है।

विश्लेषण :

वर्तमान समय में पारम्परिक ज्ञान और समझ के प्रति धारणाएँ बदल रही हैं। सबसे ख़ास बात यह है कि हमारे मन के बीच ह्रदय के समझ की संस्कृति है। गाँधी के वे शब्द बेहद प्रासंगिक हैं कि 'मन की संस्कृति ह्रदय के अधीन होनी चाहिए (Gandhi 1968)। इन सब के बीच हिन्दी डायस्पोरा-समाज ने अपनी पहचान कैसे जारी रखी है, यह जानना दिलचस्प है।

संस्कृति और भाषा :

संस्कृति को रचने में भाषा की भूमिका इतनी निर्णायक होती है कि अतीत में अस्मिता और राष्ट्रों का निर्माण भाषा के दायरों में हुआ। भारतीय सन्दर्भ में रेनेसां, बंग-भंग, स्वाधीनता आन्दोलन क्षेत्रीयता आदि भाषा से ही उपजी धाराणाएँ हैं। यूरोप में राष्ट्रीयता की अस्मिता बनाने में भाषा की अहम भूमिका थी। बेनेडिक्ट एंडरसन ने यूरोपीय राष्ट्रीयता को इसी सन्दर्भ में समझने की कोशिश की है। मध्यकालीन यूरोप में लैटिन के बर्चस्व के बीच छापे-खाने के उदय को जर्मन, फ्रेंच ,अंगरेजी, स्पेनिश और पुर्तगाली मीडिया को विकास का प्रमुख कारण माना। विभिन्न भाषाओं के मीडिया ने यूरोप की क्षेत्रीय अस्मिता और भू-राजनीतिक सीमाओं का निर्माण किया। उनका मानना था कि लैटिन का यूरोपीय भाषाओ में रूपांतरण, भाषा का विकास मात्र नहीं था, बल्कि यह अस्मिता का भी विकास था, जिसकी परिणति राष्ट्रों के रूप में हुई। भाषा के नजरिये से संस्कृति और समाज को देखना दिलचस्प होता है। सभ्यता और समाज के तमाम भौतिक विकास की कल्पना भाषा के बिना करनी मुश्किल है। विज्ञान, तकनीकी से लेकर भौतिक विकास की कल्पना में भाषा का केन्द्रीय योगदान है। मनुष्य ने ज्ञान की परंपरा का विकास भी भाषा के ही माध्यम से किया है।

मनोवैज्ञानिक एरिक एरिक्सन की यह बात कि 'मनुष्य के सामाजिक जंगल में जिंदा रहने की अनुभूति अस्मिता के बिना संभव नहीं है' (Erikson1968:38) को प्रवासियों के सन्दर्भ के ज्यादा सार्थक

ढंग से समझा जा सकता है। अपने परिवेश से विस्थापित प्रवासियों में संस्कृति और अस्मिता का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। 'संस्कृति-वंचना' इसकी भूख को बनाती है। दूसरे देश के प्रवासन के परिणाम स्वरूप दो संस्कृतियों का द्वन्द इसकी सहज परिणति है। इस द्वन्द के बीच अस्मिता का सवाल स्वाभाविक है। संस्कृति और भाषा उस अस्मिता की निरंतरता का माध्यम बनती हैं। भूमंडलीकरण के दौर में अस्मिता के बनने –मिटने की प्रक्रिया में यह प्रश्न और भी प्रासंगिक है।

भारत एक देश नहीं बल्कि सांस्कृतिक फिनेमिना है। इसका सांस्कृतिक प्रभाव गहरा है। रोम्यां रोलां का यह कहना गलत नहीं कि 'सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में मनुष्य की कल्पना और सपनो को जगह मिली तो वह भारत ही है' (Romain Rolland:The Oxford Centre for Hindu Studies at www.ocvhs.com)। संस्कृति की अभिव्यक्ति का सबसे अहम माध्यम भाषा ही है। हिन्दी दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओँ में से एक है। जितने लोग हिन्दी बोलते हैं उनसे ज्यादा लोग हिन्दी को समझते हैं और इससे कहीं ज्यादा लोग संसार में इसका बरताव करते हैं। हाल के दिनों में चीन में भारतीय फिल्मों का बाज़ार बढ़ा, तो सभी का ध्यान गया। पर हिन्दी सिनेमा की उपस्थिति अफ्रीका से लेकर दक्षिण अमेरिका के सूदूर देशों में हमारी कल्पना से ज्यादा है। इन सब की वजह यह है कि तर्क आधारित स्वतंत्रता ही मनुष्य की जरूरत नहीं है, बल्कि सामुदायिकता और सांझापन हमारे अस्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसलिए निजी समस्याओं के सारे समाधान निजी नहीं बल्कि सामूहिक भी होते हैं। यह कैसा विरोधाभासी द्वैत है कि पश्चिमी समाज अपनी समस्याओं के समाधान के लिए पूरब की और बढ़ रहा है।

प्रवासन के इतिहास में भारतीय और अस्मिता :

भारतीय सन्दर्भ में डायस्पोरा की अस्मिता का प्रश्न औपनिवेशिक काल से प्रासंगिक है। क्योंकि यही वह समय है जब बड़े पैमाने पर भारतीय अनुबंधित मजदूर के रूप में बसे। ऐतिहासिक नजरिये से दुनिया में भारतीय डायस्पोरा के प्रवासन की दो धाराएँ हैं। एक धारा औपनिवेशिक प्रक्रिया के

दौरान कैरिबियन, फ़िजी, मॉरीशस और अफ्रीका जैसे सुदूर देशों में बसी। दूसरी धारा बीसवीं शताब्दी के उन प्रवासी भारतीयों की है, जो आर्थिक बेहतरी की आकांक्षा लेकर यूरोप और अमेरिका में बसी। दोनों धाराओ में विभिन्नता के बावजूद तमाम समानताएँ भी हैँ। समानता की सबसे अहम ज़मीन है 'अस्मिता' की जिज्ञासा और प्रचलन। आज जब भारतीय प्रवासियों की आर्थिक समृद्धि के साथ 'अस्मिता' का प्रश्न महत्वपूर्ण हो गया है तब इसकी अभिव्यक्ति संस्कृति के अलावा राजनीति के क्षेत्र में भी दिखती है। भाषा अस्मिता की निर्मिति के साथ उसकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी है। डिजिटल युग की सिकुड़ती दुनिया में बॉलीवुड की बढ़ती लोकप्रियता इसी का उदाहरण है।

अस्मिता किसी देश या समाज की संस्कृति में रहने वाले लोगों के दिल और दिमाग और स्मृतियों में बसती है - गाँधी का यह कथन सात समंदर पार कैरिबियन ईस्ट इंडियन समुदाय के लिए बेहद प्रासंगिक है। गुलामी प्रथा के अन्त ने दुनिया के उपनिवेशों में गिरमिटिया प्रथा की शुरुआत की। सन् 1838 में ब्रिटिश ने कलकत्ता से गयाना के लिए चले समुद्री जहाज से कैरेबियाई देश में ईस्ट-इंडियन समुदाय के अनुबंधित मजदूरों के प्रवास का नया सिलसिला शुरू किया। ये अनुबंधित मजदूर अपने साथ लायी गठरी में ऐसा कुछ नहीं लाये थे, जिससे वे अपनी मिट्टी की याद को जिन्दा रखते। यदि कुछ साथ था तो वह था अपनी स्मृतियाँ। आज लगभग दो सौ साल बाद भी कैरिबियाई भारतीय प्रवासियों ने अपनी संस्कृति को जिस जज़्बे से ज़िंदा रखा,वह इस बात का गवाह है कि दिल और दिमाग की स्मृतियाँ दुनिया की तमाम भौतिक चीजों से ज्यादा गहरी और स्थायी होती हैं।

हिन्दी-संस्कृति का समाज :

संस्कृतियों की निर्मिति में भाषा की भूमिका अहम् होती है। भाषा ही वह माध्यम है, जिससे सामजिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढी तक निरंतरता पाते हैं। कैरेबियाई देशों जैसे फिजी, सूरीनाम, की तरह ट्रिनिडाड में भोजपुरी का प्रभाव सिर्फ भाषा के स्तर पर ही नहीं, बल्कि यहाँ के सांस्कृतिक

विस्तार में भी दिखाई देता है। इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों के कारण ईस्ट इंडियन समुदाय में परिवार की मजबूत बुनियाद आगे चल कर उनके शैक्षिक विकास का आधार भी बनी। लेकिन सामाजिक विकास में होने वाले परिवर्तनों का गहरा प्रभाव कैरेबियाई देशों की भोजपुरी संस्कृति और भाषा पर भी पड़ा।

भोजपुरी के लोक गीत, कहानियाँ , परम्परा और संगीत ने जिन भारतवंशियों की सामुदायिक अस्मिता को आधार दिया, वही भाषा आगे चल कर उन्हें अपनी शैक्षिक उन्नति में बाधा लगने लगी। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में इसाई मिशनरियों ने औपचारिक शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए अंग्रेजी भाषा को माध्यम बनाया। गुलामी की प्रथा के ख़त्म होने के कारण अफ्रीकी मूल के लोग शहरो में बसने लगे थे। परिणामस्वरूप उन्हें शिक्षित होने का अवसर भी पहले मिला। बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों तक गन्ने की खेती ख़त्म होने लगी लेकिन भारतीय मूल के लोग शूगर फार्म से निकल कर दक्षिणी त्रिनिदाद के ग्रामीण परिवेश में बस गये। यही समय था जब उन्होंने वैकल्पिक आजीविका की तलाश में शिक्षा पर ध्यान देना शुरू किया। इसी क्रम में उन्होंने अंग्रेजी भाषा के महत्व को महसूस किया; क्योंकि ब्रिटिश उपनिवेश के कारण शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही था। अंग्रेजी सीखने की जल्दी में उन्होंने अगली पीढ़ी से भोजपुरी में संवाद बंद कर दिया। भोजपुरी 'संवाद से गोपनीय जीवन की भाषा' बन गयी जिसमें माता-पिता आपस में संवाद किया करते थे। परिणाम स्वरुप भोजपुरी बोलने व समझने वालों की कि संख्या तेजी से कम होती गयी। अगले दो दशकों में भोजपुरी लोक परिदृश्य से लुप्त हो चुका था और जो बचा रह गया, वे थे धार्मिक व् सांस्कृतिक जीवन के पारिभाषिक शब्द, जो आज भी कायम हैं। कैरिबियन में भारतीय संस्कृति की निरंतरता का दायरा लंबा है, इसीलिए यहाँ भोजपुरी के प्राचीन कलेवर सोहर ,गारी से लेकर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत तक या बालीवुड से लेकर चटनी का नया प्रचलन साथ-साथ देखा जा सकता है। चाहे कोई त्यौहार हो या उत्सव,पूजा हो या कार्निवल सभी पर भारतीय संस्कृति के किसी न किसी आयाम की झलक मिल ही जाती है।

कैरिबियाई देशों में ट्रिनिडाड-टोबैगो ,सूरीनाम और गयाना में आज भी भारतीय प्रवासियों ने अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को किसी न किसी रूप में कायम रखा है। यह जानना दिलचस्प है कि कैरिबियाई संस्कृति में अफ़्रीकी संस्कृति की परम्पराओं ने अपनी पहचान कैसे खो दी, जबकि भारतीय संस्कृति की तमाम परम्पराएँ न सिर्फ कायम रहीं बल्कि उन्होंने नये सांस्कृतिक प्रतीक भी निर्मित किये। भारतीय अनुबंधित मजदूर अधिकांशत: ग्रामीण थे। समान सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण वे शूगर-स्टेट के बैरक में भी अपनी संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज और त्यौहारों को जारी रख सके। इस निरंतरता का सबसे बड़ा कारण था भाषा।

हिन्दी संस्कृति : लोक परिदृश्य

हिन्दी-संस्कृति तमाम बातों से बनती है। भाषा का सफ़र संस्कृति की यात्रा से लिपटा होता है। आज भारत में अनेक स्तर पर परिवर्तन आ रहे हैं। टेक्नोलॉजी का इंटरफेस लोक-परिदृश्य को तेजी से बदल रहा है। सन् 2016 की ग्लोबल रिपोर्ट के अनुसार भारत दुनिया में सबसे ज्यादा इन्टरनेट इस्तेमाल करने वाले देशो में एक है। सोशल मीडिया में करोंड़ों हिन्दीभाषी एक नयी भाषा और संस्कृति की रचना कर रहे हैं; विज्ञापन, विभिन्न माध्यमो में नयी सांस्कृतिक भाषा में संवाद कर रहे हैं। 'हिंगलिश' हिन्दी का एक बरताव ही नहीं, बल्कि यह औपनिवेशिक मूल्यों को भी व्यक्त करता है, इसे संदर्भो में देखे तो भाषा और संस्कृति के नये आयाम उभरते हैं। इन सब के बीच हिन्दी का एक नया लोक परिदृश्य उभर रहा है, जो नयी समझ की मांग करता है। यही नहीं भारतीय संस्कृति का ग्लोबल असर उभर रहा है। इसी का परिणाम है भारत से बाहर हिन्दी तथा इसकी संस्कृति का प्रभाव।

विभिन्न संस्कृतियों का सह अस्तित्व आज के समाज की एक सचाई है। एक दूसरे को प्रभावित करना इसकी सहज परिणति है। हिन्दी प्रवासियो ने दुनिया के तमाम देशों की संस्कृति और समझ को ही नहीं, बल्कि भाषाओं को प्रभावित किया। भाषा में इसकी आभिव्यक्ति और भी दिलचस्प है। यहाँ की क्रियोल संस्कृति में मिश्रण का आयाम उल्लेखनीय है। कैरिबियाई क्षेत्र में 'रोटी' सबसे लोकप्रिय

व्यंजन ही नहीं, बल्कि यह सबसे आम शब्दों में से एक है । हिन्दी के तमाम शब्द वहाँ की भाषा में अपनी जगह बना चुके हैं, जिसे सिर्फ भारतीय ही नहीं बल्कि सभी करते हैं । भारतीय खान-पान की संस्कृति और परंपरा लगातार लोकप्रिय हो रही है । इसके साथ साथ भारतीय रसोई के तमाम शब्द कैरिबियाई ही नहीं बल्कि दुनिया की तमाम भाषाओ में प्रचलित हो रहे हैं । गरम मसाला अंग्रेजी ही नहीं, स्पेनिश भाषा में भी प्रचलित है ।

हिन्दी का नेरेटिव कल्चर :

कहते हैं किस्सागोई मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है, जो हमें इस जीव जगत में सबसे विशिष्ट बनाती है । भारत में किस्सागोई की लम्बी और समृद्ध परंपरा रही है । भारतीय क्लासिक से लेकर जातक और लोक साहित्य की परंपरा में 'कहानी' 'कहने' का पर्याय है । ईश्वर, दर्शन और धर्म की अवधारणा भी किस्सों से समझने की परंपरा रही है । रामचरितमानस उसी का एक उदहारण है । इसका परिचय, हिन्दी का एक महाकाव्य, राम की कथा या महान कालजयी रचना के रूप में हो सकता है । पर यह परिचय पूरा नहीं है, पूरी दुनिया में भारत से जाने वाले गिरमिटिया मजदूर प्रायः सामाजिक आर्थिक रूप से समाज के हाशिये के लोग थे । इनके प्रवासन की कहानियाँ दिलचस्प हैं ।ये भारतवंशी अनुबंधित मजदूर प्रायः सामान्य सहमति से नहीं गये थे, अधिकांश बेहतर ज़िन्दगी की उम्मीद में अचानक निकले थे । इन सभी के पास अपनी सांस्कृतिक स्मृतियों के सिवाय अगर कोई बेहद बहुमूल्य चीज़ थी, तो वह थी तुलसीदास की लिखी रामचरितमानस ।

आज कैरिबियन देशों में जितने भी हिन्दू बचे हैं, उनके धर्म की धारणा को पिचले डेढ़ सौ सालो से कायम रखने में रामचरितमानस की सबसे बड़ी भूमिका है । शेरी एन सिंह कहती हैं कि रामचरित मानस ने अपने चरित्रों के माध्यम से उचित और अनुचित ही नहीं सही-गलत कर्म की शिक्षा भी दी । बीसवीं सदी के मध्य तक इसे 'पंचम वेद' के रूप में उद्घृत किया जाता था । दरअसल रामचरित मानस

में चरित्रों की बनावट और बुनावट दोनों इतने मुकम्मिल हैं कि वे जन मानस में आसानी से घुल जाते है । रामचरितमानस ऊपर से देखने में सरल और नैतिक दीखता है, पर यह अपनी सहजता में एक रहस्य की निर्मिति भी करता है, जो किसी धार्मिक पाठ्य के लिए जरूरी होता है । रामचरितमानस की छाप और स्मृति गिरमिटिया प्रवासियों में किसी भी कल्पना से ज्यादा गहरी और स्थायी है । परिवार, समाज, से लेकर परिस्थितियों तक में इसके आदर्श रास्ता दिखाते प्रतीत होते हैं, फिर वह आदर्श राजा हो या आदर्श भाई । ऐसा नहीं कि रामचरितमानस अन्य धार्मिक ग्रंथों की तरह सिर्फ आदर्श का महिमा मंडन करने वाली रचना हो बल्कि, इसके स्याह पात्र और उनकी नियति आदर्श मूल्यों की स्थापना जन मानस में बेहद प्रभावी ढंग से करते हैं ।

भगवतगीता भी हिन्दी कथा-संस्कृति का एक बेहतरीन उदाहरण है । इस दार्शनिक रचना का ताना बाना कहानी की चादर में लिपटा है । इसे समझने की जरूरत है, यह भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण आयाम है ।

बॉलीवुड : भारतीय अस्मिता की वैश्विक अपील :

बालीवुड प्रवासी के भारतीय जुड़ाव का सबसे बड़ा स्रोत है । इसकी पहुँच ग्लोबल है । बालीवुड संसार में सबसे ज्यादा फिल्मे बनाने वाला फिल्में उद्योग ही नहीं बल्कि इसकी पहुँच और प्रभाव भी महत्वपूर्ण हैं । कहते हैं कि जहाँ अंग्रेजी फिल्में भी नहीं पहुचीं, वहाँ बालीवुड की उपस्थिति है । इसका सबसे बड़ा कारण इसका नेरेटिव और उसका खास ट्रीटमेंट है । यह भारतीय संस्कृति का भी नेरेटिव है । इसकी ग्लोबल पहुँच का दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि यह समय और लोक परिदृश्य के अनुसार बदलता रहा है । दरअसल हिन्दी फिल्में भारतीय डायस्पोरा की सांस्कृतिक वंचना की भूख को बेहद प्रभावी ढंग से पूरा करती हैं । हिन्दी फिल्मों का संगीत इसका बेहद मज़बूत पक्ष है ।

कैरिबियाई भारतवंशी इस मायने में अलग रहे हैं कि उनका यूरोपीय और अमेरिकी भारतीय डायस्पोरा की तरह भारत से जीवित संपर्क नहीं रहा है । ऐसे में मिट्टी की भूख को मिटाने का जरिया

बॉलीवुड की फिल्में और गाने ही थे। यह बात पूरे विश्व के भारतवंशियों के सन्दर्भ में भी प्रासंगिक है। कैरिबियाई भारतवंशी समुदाय के लिए हिन्दी सिनेमा मनोरंजन मात्र नहीं था। उनके लिए यह एक समर्थ सांस्कृतिक ब्रांड भी था।

हिन्दी फिल्मों का जितना बड़ा बाज़ार भारत में है विदेशो भी उतना ही बड़ा बाज़ार है। यह लगातार बढ़ रहा है। हाल के वर्षो में कई हिन्दी फिल्मे भारत से ज्यादा विदेशो में सफल रही है। इसकी वजह यह कि ये हमारे संवेदना और सरोकारों के काफी करीब हैं। बालीवुड को यह सफलता तकनीक की ताकत से नहीं, बल्कि ज़ज्बात के नेरेटिव को ख़ास अंदाज़ में कहने से मिली है, इसकी जबाँ ग्लोबल है। यही कारण है कि अफ्रीका से ले कर एशिया तक सभी जगहों पर का नेरेटिव लोगों को छूता है।

हिन्दी अस्मिता का संगीत : चटनी :

'चटनी' शब्द भारतीयों के स्वाद ग्रंथि को जगाने वाला है। दक्षिणी कैरिबियाई देशो में 'चटनी' एक व्यंजन नहीं, बल्कि वहाँ का लोकप्रिय संगीत है। इसीलिए 'चटनी' कहते ही लोग यहाँ के संगीत का जिक्र करने लगते हैं। कैरेबियाई भारतीय समुदाय में अपनी भाषा ख़त्म होने की प्रक्रिया में सांस्कृतिक-अभा,व तो बढ़ा किन्तु इसी पृष्ठभूमि में 'चटनी' जैसे सांस्कृतिक प्रतीक की उत्पत्ति भी हुई। त्रिनिदाद का यह विरोधाभास कई मायनों में दिलचस्प है; क्योंकि यहाँ भोजपुरी 'संवाद' से कल्चरल डोमेन कि भाषा हो गयी है। यह सब इसलिए संभव हो पाया कि त्रिनिदाद के भारतवंशी समुदाय को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता से लगाव था।

ईस्ट इंडियन समुदाय में 'चटनी' के विकास की कहानी बेहद दिलचस्प है। सन् 1962 तक भारतीय समुदाय के लोग खेतों के पास सामूहिक रूप से रहा करते थे, जो भारत में उत्तर प्रदेश व बिहार के भोजपुरी भाषी क्षेत्रों से आये थे। भोजपुरी भाषी होने और अन्य समुदायों से अलग रहने के कारण कैरिबियाई ईस्ट इंडियन समुदाय में पारंपरिक भोजपुरी लोकगीतों की परंपरा प्रचलित थी।

त्रिनिदाद या कैरेबियन में 'चटनी' के लोकप्रिय होने का समय वही है, जब ईस्ट इंडियन समुदाय मुख्य धारा में शामिल होने की कोशिश कर रहा था ।इनमें अपनी अगली पीढ़ी को शिक्षित करने ,अंग्रेजी सिखाने की कोशिश शामिल थी।इन सभी के साथ भारतीय परम्परा को जारी रखने की चाह से जो विरोधाभास उभरा उसकी अभिव्यक्ति 'चटनी' संगीत है। पारंपरिक भोजपुरी लोकगीतों की धीमी लय व ताल की जगह 'चटनी' संगीत में लय और बीट तेज होते थे जैसे-जैसे 'चटनी' लोकप्रिय होकर भारतीय प्रवासियों के दायरे से बाहर निकली वैसे-वैसे इसमें नये प्रयोग होने लगे। इसमें भारतीय वाद्यों के साथ गिटार, सिंथेसाइजर, स्टील पैन और ड्रम का प्रयोग होने लगा। शुरू के गीतों में भोजपुरी वाक्यों में अंग्रेजी के शब्द होते थे लेकिन धीरे-धीरे अंग्रेजी के शब्द बढ़ते गये और वाक्य का ढाँचा अंग्रेजी का हो गया और उसमें शब्द हिन्दी के। 'चटनी' के नामकरण के बारे में तमाम बातें बतायी जाती हैं। दरअसल 'चटनी' की तेज धुन पूर्वी -पचिमी वाद्यों के मिश्रण के साथ 'चटनी' के चटखारे- बोल के कारण इसकी तुलना 'चटनी' से होने लगी और यही नाम भी हो गया।

हिन्दी का बाज़ार : बाज़ार का विकास :

हिन्दी के भविष्य और भविष्य की हिन्दी के लिए सबसे बड़ी बात इसे बोलने वालों की संख्या है। यह संख्या सारे अनुमानों से इसलिए भी ज्यादा है ; क्योकि भाषा के सारे सर्वेक्षण मातृभाषा के अनुमानों पर आधारित हैं, जबकि हिन्दी उन लोगो की भी भाषा है, जो अपनी अलग मातृभाषा होने के बावजूद भी हिन्दी को समझते और इसका व्यवहार करते हैं। हिन्दी का बाज़ार वह बाज़ार है, जो अभी विकासशील है। इसके विकास का बड़ा स्पेस खाली है। इसलिए बाज़ार को संवाद के लिए हिन्दी की ज़मीन पर ही संवाद करना होगा।

टेक्नोलॉजी भाषा और संस्कृति :

हिन्दी में इन्टरनेट इस्तेमाल करने वालों की संख्या दूसरे स्थान पर है , यह स्थिति तब है जब भारत में इन्टरनेट का घनत्व ज्यादा नहीं है और भाषा के स्थानीकरण का बड़ा काम बाकी है। यह बड़ा बाज़ार भाषा के स्थानीकरण की सबसे बड़ी उम्मीद है। कहते हैं कि प्रयोग और जरूरत दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों को साकार करने का काम बाज़ार कर रहा है। हिन्दी का कन्टेन्ट वेब पर उस तरह समृद्ध नहीं है, जैसा तमाम अन्य भाषाओ का। इसकी तमाम वजहें रही हैं। पर अब बदलाव हो रहा है। इस लिए उम्मीद की जा सकती है कि टेक्नोलॉजी या कंप्यूटर पर हिन्दी का इंटरफेस बेहतर और समर्थ ही नहीं, बल्कि समृद्ध भी होगा।

निष्कर्ष :

सबसे ख़ास बात यह है कि हमारे मन के बीच हृदय के समझ की संस्कृति है। संस्कृति धर्म दर्शन और ज्ञान जैसे तमाम क्षेत्र में भारत अनूठा है। भारत के प्रति दुनिया और पश्चिम की दिलचस्पी कायम ही नहीं बल्कि बढ़ रही है। इसके पारम्परिक ज्ञान को नयी दृष्टि से देखा जा रहा है। पारम्परिक ज्ञान और समझ के प्रति लोगों की धारणा बदल रही है। इसी के परिणामस्वरूप पश्चिम की तमाम समस्याओं का समाधान पूरब की समझ और ज्ञान में दिखायी देता है। डायस्पोरा की अस्मिता के संदर्भ में संस्कृति और भाषा का अहम आयाम हैं। हिन्दी भाषा और संस्कृति हिन्दी डायस्पोरा समाज में अपनी भूमिका बखूबी से अदा कर रही है।

ग्रंथ-सूची:

Anderson, Benedict.Imagined communities Reflections on the origin and Spread of Nationalism. Verso, 2006

Erikson, E. H. Identity: Youth and crisis. New York, NY: Norton Erikson, 1968.

Gandhi,M.K.The Voice of Truth: The Selected Works of Mahatma Gandhi. Ahemadabad: Navajivan Publishing House,1968

Rolland, Romain.The Oxford Centre for Hindu Studies at www.ocvhs.com

https://future.internetsociety.org/2016/wp-content/uploads/2016/11/ISOC_GIR_2016-v1.pdf

संपर्क-सूत्र:
विजिटिंग प्रोफेसर
(हिन्दी चेयर, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली)
यूनिवर्सिटी आफ केलानिया, श्री लंका
ई-मेइल: doctordpsingh@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 22-33

'बाजार में रामधन': एक अंतर्पाठ

✍ **प्रियंका कलिता**

शोध-सार :

भारतीय समाज की संरचना में कृषक-जीवन और संस्कृति एक महत्वपूर्ण घटक है । किसान के बिना भारतीय समाज की मुकम्मल तस्वीर पेश नहीं की जा सकती । आज भी भारत की उनहत्तर फीसदी जनसंख्या गाँवों में निवास करती है । गांवों की अधिकांश जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय कृषि ही है । नब्बे के दशक के पश्चात् जब उदारीकरण की नीतियाँ लागू हुईं, तब किसानों के जीवन का संघर्ष और भी बढ़ गया । खेती घाटे का सौदा होने के कारण किसान आत्महत्या करने लगे । उसके साथ ही क्रमशः किसान खेती को छोड़ने भी लगे । इस लेख में कैलाश बनवासी की चर्चित कहानी 'बाजार में रामधन' के माध्यम से किसान-जीवन की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को समझने का प्रयास किया गया है । उसके साथ ही कहानी के पाठ को विस्तृत फ़लक पर देखने एवं किसान समस्या को समझने के लिए एक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास भी किया गया है । कहानी के पाठ के अंतर्गत क्या-क्या संभावना विकसित हो सकती है, उसकी भी पड़ताल की गयी है ।

बीज शब्द : *किसान, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, कहानी, पाठक, बैल, रामधन, मुन्ना*

प्रस्तावना :

कैलाश बनवासी द्वारा रचित कहानी 'बाजार में रामधन' पहली बार सन् 1996 ई. में 'वसुधा पत्रिका' के कहानी विशेषांक में प्रकाशित हुई थी । नब्बे के दशक से लेकर अब तक के वर्षों में जब दलित विमर्श और स्त्री विमर्श की धूम मची हुई थी, ऐसे वक्त में गाँव और खेती -किसानी के संदर्भ में लिखी गयी कुछ चुनिन्दा कहानियों में 'बाजार में रामधन' कहानी का महत्व बढ़ जाता है । अपनी सम्प्रेषणशीलता के कारण यह कहानी बहुत ही सहज तथा सरल ढंग में पाठकों से रू-ब-रू

होती है, इसलिए भूमंडलीकरण के बाद किसानों के जीवन में आये परिवर्तन को और उनकी त्रासदी को परत दर परत उभारती हुई यह कहानी सहृदय पाठक की आत्मा में धँस जाती है। भारतीय समाज में किसानी केवल अन्न उत्पादन का माध्यम भर नहीं है,बल्कि वह हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। ऐसे कितने ही त्यौहार और लोकगीत हैं जो कृषि से, उगाई जाने वाली फसलों से, गर्मियों के बाद खेती के लिए जो बारिश होती है, उससे संबंध रखते हैं। होली, अक्षय तृतीया, पोंगल, ओणम, बसंत पंचमी, लोहड़ी, बैसाखी, मकर संक्रांति इत्यादि का संबंध खेती और किसानी से ही रहा है। ठीक इसी प्रकार बैलों का संबंध भी प्रत्यक्ष रूप से कृषक से जुड़ा होता है। कृषक के लिए वह केवल जानवर नहीं होता है, बल्कि उसके घर का सदस्य होता है।

विश्लेषण :

कहानी की विषयवस्तु जितनी मार्मिक है, उसका शिल्प भी उतना ही बेजोड़ है। कहानी में हमें तीन दृश्य दिखाई देते हैं। वे तीनों दृश्य हमारी स्मृतियों में कौंध जाते हैं और हृदय पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं। कहानी के पहले दृश्य में बैल को बेचने के लिए रामधन और उसके छोटे भाई मुन्ना के बीच एक संवाद उभरता है। रामधन के लिए असहज स्थिति है। वह कभी सोच ही नहीं सकता था कि एक दिन मुन्ना बैलों को बेचने की बात कहेगा। यह बात जितना रामधन को बेचैन करती है, उतना ही पाठक को भी बेचैन करती है। यह लेखक के रचना-कौशल की सफलता है। प्रेमचंद के शब्दों में-

> एक ही घटना या स्थिति से सभी मनुष्य समान रूप से प्रभावित नहीं होते। हर आदमी की मनोवृत्ति और दृष्टिकोण अलग है। रचना -कौशल इसी में है कि लेखक जिस मनोवृत्ति या दृष्टिकोण से किसी बात को देखे पाठक भी उसमें उससे सहमत हो जाए यही उसकी सफलता है। इसके साथ ही हम साहित्यकार से यह भी आशा रखते हैं कि वह अपनी बहुज्ञता और अपने विचारों की विस्तृति से हमें जाग्रत करे, हमारी दृष्टि और मानसिक परिधि को विस्तृत करे। (आचार्य 2012:155)

कहानी का दूसरा दृश्य- उसके शीर्षक का केंद्रबिन्दु है। क्योंकि कहानी का शीर्षक 'बाजार में रामधन' है। इसी दूसरे दृश्य में रामधन अपने बैलों को बेचने के लिए बाजार में खड़ा रहता है। कहानी का तीसरा और अंतिम दृश्य वह है, जिसमें रामधन बाजार से अपने बैलों के साथ वापस घर लौट रहा है। इस अंतिम दृश्य में लेखक स्वयं पाठकों को कहानी में शामिल करके सीधे संबोधित करता है। पाठकों को भी कहानी का प्रत्यक्षदर्शी बना देता है। कहानी का अंतिम दृश्य अन्तर्मन को भिगो देता है। इस कहानी के परिप्रेक्ष्य में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है-

> 'बाजार में रामधन' नामक कहानी इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी के लेखक खासतौर से या तो गाँव के जीवन से जुड़े हुए हैं अथवा गाँव की स्मृतियों को भूल नहीं गए हैं, वे एक नष्ट होती हुई संस्कृति की कहानियाँ लिख रहें हैं। (यादव 2006:208)

कहानी को तीन बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है- आरंभ, मध्य और अंत। इन्हीं तीनों दृश्यों की कसौटी पर कहानी को कसकर देखने से कहानी की आंतरिक संरचना एवं उसके अंतर्पाठ का विश्लेषण हो सकता है। कहानी अपने लघु कलेवर में चलचित्र की तरह आगे बढ़ती है।

आरंभिक दृश्य बालोद तहसील के बुधवारी बाजार से होता है, जिसमें रामधन अपने एक जोड़ी बैल लेकर बेचने के लिए खड़ा है। कहानी का मूल बिन्दु यही एक जोड़ी बैल है। लेखक खुद कथावाचक की भूमिका में मौजूद हैं और अपने पाठकों को कहानी के बारे व्यक्त करते हुए कहते हैं-

> रामधन के बारे में कुछ मोटी-मोटी जानकारी दे देना मैं उचित समझता हूँ। उमर होगी उसकी लगभग बत्तीस साल की। संपत्ति के नाम पर दो एकड़ खेत है, दो बैल और एक टूटता-फूटता पुरखौती कच्चा मकान। परिवार में बुढ़िया माँ है, पत्नी, दो बच्चे और एक छोटा भाई है- मुन्ना। रामधन चौथी कक्षा तक ही पढ़ा हुआ है लेकिन मुन्ना को बारहवीं पास किये हुए दो साल गुजर चुके हैं। रामधन ने अपने छोटे भाई को कालेज नहीं पढ़ाया। कुछ तो इसलिए कि उनके सरीखे लोगों के पढ़ने-लिखने से कुछ

होता-हवाता नहीं है दूसरी और असल बात -वही घर की आर्थिक तंगी । (यादव 2006:68)

लेखक की इन पंक्तियों के माध्यम से सम्पूर्ण कहानी की कथावस्तु और एक कृषक परिवार के घर की स्थितिबोध का ज्ञान हो जाता है । सामान्यतः भारतीय किसान की यही छवि सबके मन में उभरती है । वह भला किसान ही क्या जो कर्ज में न हो या आर्थिक तंगी में न हो । यही आर्थिक तंगी छोटे भाई मुन्ना को आगे की पढ़ाई से महरूम कर देती है । दूसरी तरफ आर्थिक तंगी के ही कारण मुन्ना खेती के आधार दो बैलों को बेचकर ही छोटा-मोटा धंधा करना चाहता है । मुन्ना आज की पीढ़ी का प्रतीक है; जो खेती -किसानी और अपनी जड़ों से कटा हुआ एक ऐसा युवा बेरोजगार है, जो दो सालों से नौकरी करने के या खोजने के नाम पर इधर-उधर घूम रहा है । परंतु अब वह इनसे भी ऊब चुका है ।

मुन्ना की नजर दो बैलों पर है । वह इन्हें बेचकर कोई धंधा करना चाहता है । उसके लिए वे सिर्फ दो बैल हैं । उसे लगता है कि वे अनावश्यक हैं,जिसके बिना भी खेती की जा सकती है । यहीं पर दोनों भाई रामधन और मुन्ना के दो अलग-अलग विकसित नजरिए को देखा जा सकता है । दोनों के बीच संवाद की मार्मिकता से कहानी के मूल कथानक को समझा जा सकता है-

"भैया बैल को बेच दो"

"ये क्या कह रहा है तू ?"

"ठीक ही तो कह रहा हूँ मैं ! बेच दो इनको । मैं धंधा करूंगा !"

"अगर कुछ बनना है, कुछ करना है तो पहले उतना कमाओ ! इसके लिए घर की चीज क्यों खराब करता है ? पहले कमा, इसके बाद बात करना ! हम तेरे लिए घर की चीज नहीं बेचेंगे । समझे ?"(यादव 2006 : 68)

मुन्ना ऐसी शिक्षा से शिक्षित है,जो अपनी जड़ों से कटकर संवेदना से शून्य एक निर्मम पीढ़ी का विकास कर रही है, जिसके लिए पैसा ही सबकुछ है । पारिवारिक संबंध, खेती और बैल सब उसके लिए अनावश्यक हैं । एक किसान के लिए बैल ही उसकी खेती का आधार होता है । बारहवीं पास मुन्ना इस सच्चाई से अनजान कैसे हो सकता है ? उसकी अर्जित शिक्षा क्या इतना भी व्यवहार बुद्धि नहीं दे सकती है । मुन्ना की सोच भूमंडलीकरण के बाद आये सामाजिक-आर्थिक बदलाव की तरफ रेखांकित करती है । जहाँ पैसे के आगे सभी चीजें गौण हो जाती हैं । उसी खेती और बैल से मेहनत -मजूरी करके रामधन और उसकी पत्नी ने अपना जीवन व्यतीत किया है । उसी के बल पर मुन्ना को बारहवीं तक पढ़ाया भी है। लेकिन मुन्ना के ऊपर कोई धंधा करने का नशा इस कदर चढ़ जाता है कि घर के एक जोड़ी बैल उसके आँख की किरकिरी बन जाते हैं । मुन्ना बैलों को अनावश्यक मानते हुए अपना तर्क निम्नलिखित रूप में रखता है-

> आखिर ये दिन भर यहाँ बेकार में बंधे ही तो रहते हैं । खेती-किसानी के दिन छोड़कर कब काम आते हैं ? यहाँ खा-खाकर मुटा रहे हैं ये ! (यादव 2006:68)

रामधन चौथी कक्षा तक ही पढ़ा है,लेकिन उसे पारिवारिक रिश्तों की समझ, सामाजिक मर्यादा का ज्ञान उसके किसानी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं । एक कृषक सदैव यह चाहता है कि उसके परिवार में एकजुटता बनी रहें तथा किसी तरह का कलह उत्पन्न न हों । प्रेमचंद के कथा साहित्य में भी इस तरह के दृष्टांत प्रायः दृष्टिगोचर होते हैं,जिनमें पारिवारिक और सामाजिक मर्यादा सबसे बड़ी चीज होती है । यह भी क्या विडम्बना है कि 'गोदान' के होरी की इच्छा गाय थी किन्तु उसका अपना ही भाई हीरा गाय को जहर देकर उसकी उम्मीद को मार देता है । रामधन का प्रेम भी अपने बैल से है लेकिन उसका अपना ही भाई मुन्ना बैलों का दुश्मन बना हुआ है । किसान की सबसे बड़ी समस्या यही रही है कि उसे जितनी बाह्य परिस्थिति से लड़ना पड़ता है, उतना ही स्वयं परिवार से संघर्ष करना पड़ता है । दोनों कृषक समांतर स्थितियों के आधार पर लड़ने के फलस्वरूप मानसिक रूप से टूट जाते हैं । 'गोदान' में प्रेमचंद ने युवा पीढ़ी द्वारा अपनी कृषि से

मोहभंग की स्थिति को गोबर के माध्यम से रेखांकित किया है। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि गोबर भी कुछ पढ़-लिख पाता तो मुन्ना की भाँति वह भी काम-धंधे के नाम पर होरी से ऐसी ही जिद करता जो होरी जैसे सामान्य किसान के लिए संभव नहीं होता।

रामधन की मानसिक दशा एवं परिस्थितियों को देखकर होरी की छवि बरबस सामने आ जाती है। प्रस्तुत 'बाजार में रामधन' कहानी गोदान उपन्यास की अगली कड़ी के रूप में प्रतीत होती है। औपनिवेशिक भारत में जहाँ लगान के अभाव में होरी को अपने खेत से दूर होना पड़ता है, वहीं स्वतंत्र भारत में रामधन को अपने बैल से अलग होना पड़ता है। किसान की आर्थिक स्थिति का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि भारतीय किसान की अवस्था परिस्थितियों के सम्मुख कितनी विवश रही है।

एक भाई के लिए बैल बेकार में बंधे दिखाई पड़ते हैं। रामधन के मानसिक द्वंद को कहानीकार ने अधोलिखित रूप में उल्लेख किया है-

> रामधन मुन्ना को समझा नहीं पा रहा था। वह समझ भी नहीं सकता था। अब कैसे समझाता इस बात को कि बैल हमारे घर की इज्जत है..... घर की शोभा है। और इससे बढ़कर हमारे पिता की धरोहर है। उस किसान का भी कोई मान है समाज में, जिसके घर एक जोड़ी बैल नहीं हैं ! कैसे समझाता कि हमारे साथ रहते-रहते ये भी घर के सदस्य हो गए हैं। जो भी रूखा-सूखा,पेज-पसिया मिलता है, उसी में खुश रहते हैं। वह मुन्ना से कहना चाहता था, तुमको इनका बेकार बंधा रहना दिखता है मगर इनकी सेवा नहीं दिखती ? इनकी दया-मया नहीं दिखती ?(यादव 2006:69)

कैलाश बनवासी की लिखी इन पंक्तियों में किसी को भी कहीं न कहीं प्रेमचंद की गूंज सुनाई दे सकती है। रामधन का अपने छोटे भाई मुन्ना से इस बात के लिए उलझना अच्छा नहीं लगता है। वह बड़ा भाई होने के कारण इसकी मर्यादा को समझता है। लेकिन मुन्ना के लिए यह सब मायने नहीं रखता।

> रामधन को एक गहरा धक्का लगा था, अब यह भी मुंह उठाकर बोलना सीख गया है। लेकिन इससे भी ज्यादा दुःख इस बात का हुआ कि मुन्ना उसे बेचने को कह रहा है जो उनकी खेती का आधार है। (यादव 2006:68)

दोनों भाइयों के मध्य इस विषय पर प्रतिदिन कुछ न कुछ बातचीत हो रही थी। बातों का तीखापन बढ़ता जा रहा था। यह भी जीवनानुभव की बात है कि अपने लोगों की बातें आत्मा पर चोट करती हैं। वह आंतरिक घाव बाह्य घाव से अधिक कष्ट पहुँचाता है। मुन्ना के व्यवहार ने किस प्रकार रामधन के हृदय पर मार्मिक प्रहार किया, इसको कथाकार ने निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है-

> बातचीत हर बार अपनी पिछली सीमा लांघ रही थी। कहने को तो मुन्ना यहाँ तक कह दिया था कि इन बैलों पर सिर्फ तुम्हारा ही नहीं मेरा भी हक है। इस बात ने लाजवाब कर दिया था रामधन को। और अवाक ! कभी नहीं सोचा था उसने कि मुन्ना उसके जैसे सीधे-साधे आदमी से हक की बात करेगा। मुन्ना को क्या लगता है, मैं उसका हिस्सा हड़पने के लिए बैठा हूँ ? रामधन खूब रोया था इस बात पर... अकेले में। (यादव 2006:68-69)

अब कहानी का दूसरा दृश्य आरंभ होता है तथा कहानी के मर्म का विस्तार होता है। लेखक ने एकदम सधी हुई भाषा में पशु मेले के वातावरण का निर्माण किया। एक ऐसा पशु मेला, जहाँ भिन्न-भिन्न कद-काठी के बैल एक साथ बिकने के लिए लाये गये हैं। इसी मेले में रामधन भी अपने बैलों को बेचने के लिए आया हुआ है। उसकी मनोस्थिति का अनुमान लगा पाना संभव नहीं है। एक अच्छी कहानी की विशेषता यह भी है कि वह पाठक के अंदर, अंत तक कौतूहल बनाए रखे, उसे कहानी के साथ बांधे रहे। लेखक की यह सार्थकता है कि रामधन जैसे साधारण कृषक को उसकी वेश-भूषा के साथ जीवंत कर दिया है। इसलिए कहानी पढ़ते समय पाठक का साधारणीकरण रामधन के साथ हो जाता है। उससे एक तादात्म्य स्थापित कर लेता है, रामधन के

चरित्र का विस्तार हमारे आसपास के किसान के साथ हो जाता है,कहानी का मानवीय पहलू संवेदनात्मक रूप से जुड़ जाता है । ग्राम्यांचलों से सम्बद्ध पाठकों के लिए प्रस्तुत कहानी सहजतापूर्वक ग्राह्य हो जाती है; क्योंकि कथानक और पात्र उसके परिवेश का हिस्सा प्रतीत होते हैं।

वर्तमान विश्व एक बाजार बन चुका है । यह बाजारवाद के अतिक्रमण का दौर है । न चाहते हुए भी हम बाजार से अछूते नहीं रह पाते हैं । बाजार हमारी आवश्यकता को पूरा ही नहीं करता है, बल्कि जरूरत को पैदा भी करता है । वह अपने तमाम तरह के प्रलोभनों के हथकंडे अपनाकर ग्राहक पर शिकंजा कसता है । ग्राहक आगे-आगे भागता है और बाजार उसका पीछा करता है । बाजार पहले भी था और अब भी है । लेकिन दोनों में यही बुनियादी अंतर है । बाजार में रामधन अपना सौदा बेचने के लिए जरूर खड़ा है, लेकिन पैसे का प्रलोभन उसके किसानी स्वाभिमान और संवेदना को नहीं खरीद पाता है । एक से बढ़कर एक बाजार के माहिर खरीददार, दलाल और बिचौलिया बैलों का सौदा करने का प्रयास करते हैं । अपने शब्दों के जाल में उलझाते हैं, गाँव-घर और आत्मीयता का हवाला देते हैं। लेकिन रामधन उनके प्रभाव में नहीं आता । भूलऊ महाराज, सहदेव, भूनेश्वर दाऊ, चइता जैसे बैलों के खरीदार एवं दलाल जिन्हें अपने ऊपर यह अहंकार होता है कि कोई भी सौदा हो उसे पटाने का कौशल उन्हें प्राप्त है। लेकिन रामधन के दृढ़निश्चय के सामने उनके तर्क विफल हुए ।

लेखक को पात्रों की संवाद शैली में अचूक सफलता मिली है । किसानी-जीवन के शब्दों को इस प्रकार से सँजोया गया है कि पशु मेले का ग्रामीण परिवेश सजीव हो जाता है । कथ्य के अनुरूप सजग भाषा के प्रयोग से कहानी अपनी वास्तविकता में ढल गयी है । कहानी के दूसरे दृश्य में लेखक अपनी तरफ से बहुत कम कहता है अधिकांश पात्रों के बीच संवाद ही चलता है । कैलाश बनवासी ने संवाद के स्तर पर कहानी को उसके चरम बिन्दु पर पहुँचा दिया है । यह संवाद मनुष्य-मनुष्य के मध्य ही नहीं, बल्कि मूक जानवर के अंदर की करुणा एवं दया भाव को भी उन्होंने सरलता के साथ प्रकट कर दिया है ।

रामधन एक सीधा-सादा किसान अवश्य है, परंतु मूर्ख नहीं है। वह मेले के चाल-ढाल से परिचित है कि यहाँ भिन्न- भिन्न मानसिकता के लोग अपनी धूर्तता को छिपाते हुए सादगी की खाल ओढ़कर आते हैं। वे तरह-तरह की बातें बनाकर अपने अंतिम समय तक सौदा तय करने का प्रयास करते हैं; साम, दाम, दंड, भेद सभी तरह के हथकंडे अपनाते हैं। रामधन अपने बैलों का दाम चार हजार मांग रहा है लेकिन ग्राहक तीन हजार पाँच सौ तक दाम लगाते हैं। ग्राहक बहुत हुज्जत करते हैं, आग बबूला होते हैं। लेकिन रामधन शांति से काम लेता है। उसका धैर्य देखते बनता है। भुलऊ महाराज मीठी -मीठी बातों से रामधन को प्रभावित करके बैल खरीदना चाहते हैं, किन्तु जब पता चलता है कि रामधन चार हजार से एक पैसा भी कम करने के लिए तैयार नहीं है, तब उनका गुस्सा सातवें आसमान पर चला जाता है। दोनों के बीच वार्तालाप की कुछ बानगी देखते बनती है-

"अच्छा रामधन, जरा इनको रेंगाकर दिखाओ। चाल देख लूँ"....

"अच्छा, अब जरा इनका मुंह खोलकर दिखाओ। मैं इनके दांत गिनूँगा।"

महाराज ने अपने को खाँस-खंखारकर व्यवस्थित किया, फिर पूछा, "तो बताना भाई, कितने में दोगे ?"

रामधन विनम्र हो गया, "मैं तो पहले ही बता चुका हूँ मालिक..."

नाराजगी से भुलऊ महाराज का चन्दन और रोली का तिलक लगा माथा सिकुड़ गया, "फिर वही बात ! वाजिब दाम लगाओ,रामधन।"...

"क्या यार रामधन ! जान-पहचान के आदमी से तो कुछ कम करो। आखिर एक गाँव-घर होने का कोई मतलब है कि नहीं ? आंय !" .....

"नहीं पड़ेगा महराज, मेरी बात मानों। अगर पड़ता तो मैं दे नहीं देता।".....

> "तो साले एक तुम्हीं हो दुनियाँ में बैल बेचने वाले ? बाकी ये सब तो मुंह देखने वाले हैं! इतना गुमान ठीक नहीं रामधन !" (यादव 2006:69-70)

कहानी एक ऐसी विधा है,जहाँ बहुत कम शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है। शब्दों को तराशकर दीवार में ईंट की तरह चुनाई करना पड़ता है। शब्दों को विन्यस्त करके ही एक अच्छे भाव का सम्प्रेषण किया जा सकता है। इस अर्थ में कैलाश बनवासी ने इस कहानी में कथ्य के अनुरूप ही शिल्प का चुनाव किया है। कहानी इसीलिए पाठक की अनुभूति का हिस्सा बन जाती है। इस संदर्भ में कमलेश्वर का कथन दृष्टव्य है-

> अब हर चीज कथ्य के बिन्दु से निश्चित होती है- कथ्य ही भाषा,शिल्प,शैली का निर्णायक है और लेखक कथ्य की प्रामाणिकता का रक्षक है। (कमलेश्वर 2015:134)

इसी दृश्य के अंत में लेखक ने पाठकों को संकेत दे दिया है कि रामधन लगातार तीसरे दिन बाजार में बैल को लेकर आया है। वह बिना बेचे ही हाट से अपने बैलों के साथ वापस लौट रहा है। यह परवाह किए बिना कि गाँव वाले हँसेंगे, घर में पत्नी अलग चिड़चिड़ायेगी और मुन्ना फिर गुस्सायेगा।

कहानी का तीसरे और अंतिम दृश्य को लेखक ने बहुत संक्षेप में लिखा है। लेकिन यह अंतिम दृश्य ही पाठक की आत्मा को निचोड़ देता है, मन को पूरी तरह भिगो देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामधन की बीड़ी का आखिरी कश ही नहीं बुझता है, बल्कि पूरे किसान के जीवन की आशा एवं उम्मीद भी बीड़ी के आखिरी कश की तरह बुझ जाती है। कहानी का अंत पाठक को ज़ोर का धक्का देकर निस्तब्ध कर देता है, मन की भीतरी परत तक एक सन्नाटा छा जाता है। लेखक खुद महाभारत के संजय की तरह पाठक को दृश्य देखने और सुनने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। कहानी का अंतिम दृश्य अपने चरमबिन्दु पर पहुँच गया है, जो इस प्रकार है-

> 'रामधन बैलों की रस्सी थामे, बीड़ी पीते हुए चुपचाप लौट रहा है। पैदल। सांझ खूब गहरा चुकी है और अंधेरा चारों ओर घिर आया है। वह किसी गाँव के धूल अटे कच्चे रास्ते से गुजर रहा है। जब आप ध्यान से देखेंगे तो पाएंगे, वे दो बैल और रामधन नहीं, बल्कि आपस के तीन गहरे साथी जा रहे हैं। हाँ, तीन गहरे साथी। ...आप ध्यान से सुनिए वे आपस में बातें कर रहे हैं...
>
> उसके बैल पूछ रहे हैं, "मान लो अगर दाऊ या महराज तुम्हें चार हजार दे रहे होते तो क्या तुम हमें बेच दिए होते ?"
>
> रामधन ने जवाब दिया, "शायद नहीं। फिर भी नहीं बेचता उनके हाथ तुमको।"
>
> "बेचना तो पड़ेगा एक दिन !" बैल कह रहे हैं, "आखिर तुम हमें कब तक बचाओगे, रामधन ? कब तक ?"
>
> जवाब में रामधन मुस्करा दिया- एक बहुत फीकी और उदास मुस्कान ... अनिश्चितता से भरी हुई। रामधन अपने बैलों से कह रहा है, "देखो ... हो सकता है अगली हाट में मुन्ना तुम्हें लेकर आए।"
>
> बीड़ी का यह आखिरी कश था और वह बुझने लगी। (यादव 2006:71)

'बाजार में रामधन' कहानी भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप नष्ट होती भारतीय ग्राम ग्राम्य संस्कृति की करुण कहानी है। इस संबंध में आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने इस कहानी के परिप्रेक्ष्य में उचित ही टिप्पणी की है-

> अपनी साहित्यिक विरासत के आधार पर आज यही कहने को जी चाहता है कि भूमंडलीकरण के आक्रामक दौर में नष्ट होती हुई ग्राम संस्कृति और आत्महत्या के लिए विवश किसानों को केंद्र में रखकर किया जाने वाला कथा सृजन ही अपनी सार्थकता प्रमाणित कर सकता है। (यादव 2006:208)

निष्कर्ष :

बाजारवाद ने किसानों से केवल उसके अंतरंग साथी बैल को ही नहीं छीना है, बल्कि उनकी आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान को भी छीना है । आज किसान गहरे संकट से गुजर रहा है । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ खाद, बीज, कीटनाशक दवा का कारोबार करके अरबपति बन रही हैं, किन्तु किसान अपनी दुर्दशा से तंग आकर आत्महत्या कर रहे हैं। खेती की लागत इतनी बढ़ गयी है और आमदनी घट गयी है । अब रामधन जैसे छोटे काश्तकर खेती के बल पर अपनी जीविका नहीं चला सकते हैं । खेती की इसी दशा के कारण मुन्ना जैसे लोगों का मोहभंग हो गया है, किन्तु वे भी विकल्पहीन हैं । मुन्ना रोजगार के नाम पर घर की पूंजी बैल को ही बेचने पर अड़ा हुआ है । मुन्ना जैसे लोग सिर्फ बैल ही नहीं बेचते हैं, हो सकता है कि व्यवसाय में असफल होने पर भविष्य में खेत बेचकर धंधा करने की जिद वह अपने भाई रामधन से करे । कैलाश बनवासी की यह कहानी किसान-जीवन की त्रासदी को एक रूपक कथा के रूप में प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करती है ।

ग्रंथ-सूची :

आचार्य, नंदकिशोर.सम्पा. प्रेमचंद का चिंतन.बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन, 2018.

कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका.पहला.नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 2015.

कैलाश, बनवासी.“बाजार में रामधन.” हंस 239 (2006):68-71.

प्रेमचंद.गोदान.वाराणसी:अनुराग प्रकाशन, 2014.

सिंह, नामवर. “विमर्शों के शोर में दबते किसानों के सवाल.” हंस 239 (2006): 207-209.

संपर्क-सूत्र:
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय
ई-मेइल- priyanka2016kalita@gamil.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 34-53

'करवट' और 'ढाई घर' में चित्रित अंग्रेजकालीन भारत

✍ डॉ॰ संजीव मण्डल

शोध-सार :

'करवट' और 'ढाई घर' उपन्यास में जो कालखण्ड लिया गया है, वह भारत में अंग्रेजों के शासन का काल है। 'करवट' में युवा पीढ़ी की अंग्रेजी शिक्षा का महत्व समझ उसके प्रति आकर्षित होते जाने का वर्णन है। इस उपन्यास में अग्रेंजों के भारत में आने पर उनके साथ एक नयी चेतना का भारत में आगमन होता है। इससे भारतीय समाज व्यवस्था में परिवर्तन होने लगता है। पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच नयी विचारधारा को लेकर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारत में ब्राह्म समाज के प्रभाव का भी बहुत विस्तार से वर्णन हुआ है। वही 'ढाई घर' उपन्यास में अंग्रेजकालीन भारत में नारी की पराधीनता का चित्रण किया गया है। साथ ही भारतीय जमींदारों के अंग्रेजों की राजनीतिक गुलामी ही नहीं, मानसिक गुलामी करने का भी खुला चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में बड़े राय भारत का भविष्य देख लेते हैं कि शिक्षित लोगों के पास ही सारी क्षमता केंद्रित हो जायेगी और परोपजीवी लोगों का जमाना खत्म हो जायेगा। प्रजा पर जमींदारों के अमानवीय अत्याचार को भी बिम्बित किया गया है।

बीज शब्द : *अंग्रेजी शिक्षा, नयी चेतना, ब्राह्म समाज, जमींदार, अत्याचार*

प्रस्तावना:

उपन्यास अमृतलाल नागर (1916 ई.-1990 ई.) और गिरिराज किशोर (1937 ई.-2020 ई.) हिन्दी उपन्यास साहित्य के दो यशस्वी उपन्यासकार हैं। अमृतलाल नागर द्वारा रचित उपन्यास हैं- 'महाकाल' (1947 ई.), 'बूँद और समुद्र' (1956 ई.), 'शतरंग के मोहरे' (1959 ई.), 'सुहाग के नूपुर' (1960 ई.), 'अमृत और विष' (1966 ई.), 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' (1968 ई.), 'एकदा

नैमिषारण्ये' (1972 ई.), 'मानस का हंस' (1972 ई.), 'नाच्यो बहुत गोपाल' (1978 ई.), 'खंजन नयन' (1981 ई.), 'बिखर तिनके' (1982 ई.), 'अग्निगर्भा' (1983 ई.), 'करवट' (1985 ई.), 'पीढ़ियाँ' (1990 ई.)।

गिरिराज किशोर के प्रकाशित उपन्यास हैं- 'लोग' (1966 ई.), 'चिड़ियाघर' (1968 ई.), 'यात्राएँ' (1971 ई.), 'जुगलबंदी' (1973 ई.), 'दो' (1974 ई.), 'इंद्र सुने' (1978 ई.), 'दावेदार' (1979 ई.), 'यथाप्रस्तावित' (1982 ई.), 'तीसरी सत्ता' (1982 ई.), 'परिशिष्ट' (1984 ई.), 'असलाह' (1987 ई.), 'अंतर्ध्वंस' (1990 ई.), 'ढाई घर' (1991 ई.), 'यातनाघर' (1997 ई.), 'पहला गिरिमिटिया' (1999 ई.) , 'इक आग का दरिया है' (2007 ई.), 'बा' (2016 ई.), 'आंजनेय जयते' (2018 ई.)।

प्रस्तुत पत्र में हमने विवेचन के लिए दो उपन्यासों को लिया है। पहला उपन्यास अमृतलाल नागर द्वारा रचित 'करवट' और दूसरा गिरिराज किशोर द्वारा रचित 'ढाई घर'। दोनों ही उपन्यासों में अंग्रेजकालीन भारत का चित्रण हुआ है। अंग्रेजकालीन भारतीय समाज, राजनीति, अर्थनीति को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है।

विश्लेषण :

'करवट' और 'ढाई घर' दोनों उपन्यास स्वतन्त्रता के बाद के हैं, पर कथाकारों ने उपन्यासों में अंग्रेजों के शासनकाल के भारत का चित्रण किया है। प्रकाशन क्रम के अनुसार पहले 'करवट' और फिर 'ढाई घर' उपन्यास में चित्रित अंग्रेजकालीन भारत को समझने का प्रयास किया गया है।

'करवट' में चित्रित अंग्रेजकालीन भारत:

इस उपन्यास को तृतीय पुरुष की शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास में अंग्रेजों के राज में अंग्रेजी शिक्षा का कितना महत्त्व हो गया था, उन्हें कहानी का हिस्सा बनाकर पेश किया गया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र बंसीधर टंडन अंग्रेजी शिक्षा का महत्त्व समझता है और अंग्रेजी शिक्षा

प्राप्त करने का बहुत प्रयास करता है। अंग्रेजी भाषा जानने के कारण उसको जीवन में बहुत सी सफलता मिलती है। बंसीधर टंडन के संदर्भ में उपन्यास में एक जगह वर्णन आता है-

> बंसीधर की अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा जानी तो बोला, इसे भी सीख लेना चाहिए। यह आने वाली सरकारी जबान है। नजरबाग के पास ही फादर जेकिंस का अंग्रेजी स्कूल था। नीची मानी जाने वाली हिंदू मुसलमान जातियों के आठ नये ईसाई लड़के थे, जिनकी पढ़ाई के लिए 25 रुपया मिशन देता था। (नागर 2016:15)

बंसीधर जानता है कि अंग्रेजी पढ़ने पर उसकी किस्मत बदल सकती है। अत: वह अपने अंग्रेजी शिक्षक के हिंदू और मुसलमान धर्म को बुरा-भला कहने पर भी अपने साथी को क्रोधित होने से रोकता है-

> छोटे भैया, ये हमारे शाह के भी शाहों की कौम का है। शहजोर हमेशा कमजोरों को दबाते ही आये हैं। इसलिए इनकी बकवास को भूल जाइये। चूंकि हमारा मुस्तकबिल अंग्रेज जबान से ही निखर सकता है इसलिए चुप होकर पढ़ लीजिये। जब पढ़ाई पूरी हो जाये तो साले की टांग तोड़ देंगे। (नागर 2016:16)

अंग्रेज व्यापारियों के रूप में भारत में आये थे। पर धीरे-धीरे साम,दाम,दंड,भेद से पूरे भारत को अपने अधीन कर लिया था। नबाव वाजिद अली शाह को भी वे इसी प्रकार पदच्युत करके कैद कर लेते हैं। वाजिद अली शाह को कैद करने की बात जब लखनऊ निवासी सुनते हैं तो भय से आक्रांत हो जाते हैं-

> बादशाह के कैद में डाले जाने की बात सुनकर बंसीधर उर्फ तनकुन का कलेजा धक से उड़ गया। बादशाह कैद में डाला जायेगा, यह बात ही ऐसी भयप्रद थी कि क्षण भर के लिए उसे लगा जैसे चलते हुए तमाशे के बीच में तमाशा दिखाने वाला ही एकाएक गिरकर मर गया हो। (नागर 2016:18)

वाजिद अली शाह ने जब अंग्रेजों के कहे अनुसार काम करने से इनकार कर दिया तो उनको और उनके परिवार को बहुत बेइज्जत किया गया था। नवाब की बेइज्जती प्रजा की भी बेइज्जती थी।

पर अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय लड़ने के काबिल नहीं थे। वाजिद अली शाह और उनके परिवारजनों को किस प्रकार बेआबरू किया गया, इसका वर्णन इस उपन्यास में है-

> लखनऊ की हालत बहुत खराब है। बादशाह ने अंग्रेजों की शर्तें नहीं मानीं। राजीनामे पर दस्तखत नहीं किये इसलिए कंपनी सरकार उन्हें बेइज्जत करने पर तुल गई है। बड़े-बड़े रईसों की मूँछे पकड़-पकड़ कर झुका दीं इन साले अंग्रेजों ने। बेगमों से छतरमंजिल खाली करा लिया गया। उनकी और उनके बच्चों की बड़ी बेआबरुई हुई और अभी हो ही रही, भैया। कल सांझ के बखत ही हमें खबर मिली है कि बादशाह अगर उस सुलहनामे को नहीं मानेंगे, तो उनसे गद्दी छीन ली जायेगी और उन्हें गिरफ्तार कर लिया जायेगा। (नागर 2016:101)

भारत का सामंत वर्ग अकर्मण्य और भ्रष्ट हो गया था। हमारा समाज पिछड़ा हुआ था। पर इसे बदलने का दायित्व हम पर था। अंग्रेज इसमें दखल देने के अधिकारी नहीं थे। वे कहते थे कि उनके भारत पर शासन करने के बाद यहाँ अमन और खुशियाँ फैल गयी। उन्होंने भारतीय लोगों पर शासन कर उन पर एहसान नहीं किया; बल्कि उन्हें गुलाम बनाकर रखा। उपन्यास में एक जगह वर्णन आता है-

> बादशाह अशक्त हो मगर हम सबके स्वाभिमान का प्रतीक है। बंसी के अंग्रेज मित्र इन ऐयाश सामंतों की बहुत निंदा करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि सामंतों की बहुत सी बातें सार्वजनिक रूप से निंदा के योग्य हैं। इस समाज को बदलना ही चाहिए। मगर वह शासन पद्धति बदले या हम लोग ही बदलें । बाहर वाला आकर हमें क्यों बदले। शेखी बघराते हैं, यह गोरे लोग कि हमने तुम्हारे देश के कोने-कोने में तार लगवाए, रेलें चलवायीं। जहाँ-जहाँ इन राजे-महाराजे और शाहों-नवाबों की रियासतें हमने अपनी हुकूमत में शामिल कर ली हैं,वहाँ-वहाँ अमन चैन हो गया है। (नागर 2016:119)

प्रारंभ में चीन में ही चाय का उत्पादन होता था। पूरी दुनिया में चाय एक लोकप्रिय पेय बन गयी थी। अंग्रेज दुनिया की चाय की इस खपत को पूरा करने के लिए असम में चाय की खेती करने

लगे थे। चाय के द्वारा अंग्रेज एक अच्छी-खासी आमदानी करते थे। इस उपन्यास में भी चाय के इस व्यावसाय का वर्णन आता है-

> लेकिन साथ ही साथ इसके बजाय अब 'टी' का फैशन चला है। चीन की चीज है, एक कली दो पत्ती, इसे भी उबाल कर ही पिया जाता है। पहले यह भी महंगी थी, मगर 1834 से हम लोगों ने इसे आसाम में भी उगाना शुरू किया। अब तो यह सस्ती हो चली है। एक दिन तुमको 'टी' भी पिलाऊंगा। बड़ा स्फूर्तिदायक पेय है। (नागर 2016:23)

अंग्रेजों के संपर्क के कारण भारतीयों का एक तबका विशेषत: नयी पीढ़ी आधुनिक विचार धारा से प्रभावित होने लगी थी। यह विचारधारा पश्चिम से अंग्रेजों के साथ आयी थी। भारत में सदियों से कम उम्र में विवाह हो जाया करते थे। पर आधुनिक विचारधारा से प्रभावित नयी पीढ़ी बालिग होने के बाद ही विवाह करना उचित मानने लगी थी। इस उपन्यास का पात्र विपिन अपनी माँ से बहस करते हुए टूटी-फूटी अंग्रेजी में कहता है-

> "नो यूज हियरिंग ओल्ड मैन। इंग्लिश मैन वोमैन मैरी व्हेन यंग, एण्ड नाट व्हेन स्माल बायज। अंडरस्टैण्ड?"
>
> सुनकर बंसीधर हंस पड़ा। हिंदी में बोला: "पर अभी हमारे यहाँ के लोग इतने समझदार नहीं हुए भइया।"
>
> "नो आई मेरी व्हेन आई बिकम एट्टीन इयर ओल्ड।" (नागर 2016:65)

इस पर जब माँ बोलती है कि उतनी उम्र में बराबर उम्र की कन्या कहाँ मिलेंगी? सभी कन्याओं की तो शादी हो जाती है छोटी उम्र में तो वह जवाब देते हुए कहता है कि ब्राह्म समाज में शामिल परिवार की युवती शादी करेगा। इससे इस सर्वज्ञात तथ्य की पुष्टि होती है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ब्राह्म समाज के विचार लोगों में खास कर बंगाल के लोगों में फैलने लगे थे-

> उसकी हमको बेसी चिंता नहीं, जीजाजी बर्द्धमान का राजा अपनी खत्री बिरादरी का है, उनके यहाँ ब्राह्मो ऐडियाज वाला दो एक खत्री फेमिली भी है। जदी देस वाला न मिला तो हम हुआं बीबा कर लेंगे। बीडो मैरेज कर लेंगे। बिरादरी वाले बेसी विरोध करेंगे तो ब्राह्मो या क्रिस्तान हो जायेंगे। हम अम्मा को यह बात बोल दिया है कि बार-बार पूछ के हमरा देमाक खराब करना अम्मा बाबू किसी के लिए भी अच्छा नहीं होएगा। (नागर 2016:66)

भारत की युवा पीढ़ी समझने लगी थी कि उन्हें अपनी सोच में बदलाव लाना होगा और रूढ़ियों को छोड़ना होगा। अंग्रेज इसलिए हमसे आगे है क्योंकि वे समय के साथ चल रहे हैं। उपन्यास का नायक बंसीधर इस बात का अनुभव करता है। वह चाहता है कि उसकी पत्नी भी मेमों की तरह स्वच्छंद रह सके -

> बंसीधर सोचने लगा कि यह ताजगी और विचार स्वातंत्र्य हमारे उधर के युवकों में नहीं है। बंगाल कितनी तेजी से बदल रहा है। जो समय के साथ न चलेगा वह पिछड़ जायेगा। सोचने लगा कि एक बार यहाँ जम जाए तो पत्नी को यहीं बुलवा लेगा। अच्छी शिक्षा दिलायेगा, अंग्रेजी भी सिखायेगा। वह तो चाहता है कि उसकी पत्नी मेमों की तरह आजादी का जीवन बिताए पर शायद यह संभव नहीं। बढ़ते हुए समय के साथ-साथ हमारे समाज को भी बदलना ही पड़ेगा। अभी हम लोग समय से बहुत पीछे हैं, और इसी पिछड़ेपन के कारण ही चतुर अंग्रेज हमसे कोसों आगे निकल गये। ये मुट्ठीभर लाल मुँह वाले हमारे चतुर से चतुर देसवालों को खड़े-खड़े बुद्धू बना देते हैं। (नागर 2016:66)

बंगाल अंग्रेजों के संपर्क से बहुत तेजी से तरक्की कर रहा था। भारत की बाकी जगहें उसकी तुलना में कछुए की चाल चल रही थीं। अंग्रेजी भाषा ही उन्नति का रास्ता है- यह बात युवा पीढ़ी बहुत सिद्दत से अनुभव करने लगी थी। बंसीधर भी यह बात अनुभव करता है-

> लखनऊ में अभी तक उर्दू, अरबी, फारसी का बड़ा माहात्म्य है लेकिन कलकत्ते में बेपढ़े लोगों के मुँह से भी अंग्रेजी के शब्द आम हो चले हैं। कलकत्ते में अंग्रेजी चेतना ने इंग्लैण्ड के बाद जैसे अपना दूसरा घर ही बना लिया है। यहाँ उसकी फारसी पढ़ाई की कोई कद्र नहीं, अंग्रेजी का बोलबाला है। राजा राममोहन राय और ईश्वर चंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन और प्रिंस द्वारकानाथ, देवेंद्र नाथ ठाकुर जैसे बड़े-बड़े अंग्रेजी के विद्वान हिंदू यहाँ हुए हैं। यहाँ के लोग उद्योग-धंधों में लगे हैं और हमारे यहाँ तीतर-बटेरबाजी, ठल्लेनवीसी और बुरी लतों से ही जवानों को फुर्सत नहीं मिलती। (नागर 2016:66)

भारतीय अंग्रेज मात्र को इज्जत की नजर से देखते थे। अगर किसी व्यक्ति के साथ कोई अंग्रेज दिख जाता था उस व्यक्ति का महत्त्व अपने आप बढ़ जाता था। इस उपन्यास में कहा गया है -

> अंग्रेज साहब के साथ बंसीधर को मिर्जापुर हाउस के सामने की सड़क पर आते-आते हिंदोस्तानियों की नजर ठिठक गयी। साहब इमारत के भीतर साथ ही साथ चला। सीढ़ियों पर आते-जाते दो एक पुराने किरायेदारों ने कुछ दिन पहले आये हुए नये किरायेदार के साथ गोरे साहब को आते देखा तो अदब से सलाम करते हुए बीच के रास्ते से हट गये। (नागर 2016:87)

जैसा कि हम सभी जानते हैं अंग्रेज भारत से कच्चा माल ले जाते थे और अपने कारखानों-मीलों में बने सामन भारत में लाकर बेचते थे। उनकी सामग्री बेचने के लिए कलकत्ता में बंगली व्यापारी होते थे। पर उनके साथ भारत के दूसरे हिस्सों आये व्यापारी भी इस व्यापार में उतर गये थे। व्यापार में प्रतिस्पर्धा का होना तो आम बात है। इन व्यापारियों में भी प्रतिस्पर्धा की भावना घर कर गयी थी। विपिन बंसीधर को वाल्टर स्मिथ के साथ व्यापार को लेकर हुई बातें बताता है जिससे हमें व्यापारियों की प्रतिद्वंद्विता का पता चलता है-

> वह बंगलिया तरनतारन साला अब खाय-खाय के मुटाय गया है ना। ही नाऊ नाट केयर फार सर वाल्टर एण्ड नाट थिंक व्हाट पोजीशन इज सर वाल्टर स्मिथ। परसों

> हमसे कहते थे, अब तो सर वाल्टर हमको नन्हा बोलते हैं। बोला नन्हा, न्यू डिजाइन कम फ्राम बरमिंघम, तुम बेचेगा । हम बोला, वह बंगाली बाबू साला बुरा मान जायगा सर। बोला, आई डू नाट केयर फार बंगाली, तुम बेचेगा? हम बोला, यस सर। कल उसके दफ्तर जायेंगे, नया सैम्पुल लायेंगे। (नागर 2016:91)

अंग्रेजों के संपर्क से अंग्रेजी शिक्षा के प्रति लोगों की रुचि बढ़ने लगी थी। अब पढ़े-लिखे लड़के अनपढ़ लड़कियों को पत्नी रूप में ग्रहण करने से मना कर देते थे। यह एक नयी सामाजिक समस्या का रूप ले रहा था। उपन्यास में विपिन कहता है-

> एक बात कहें बाबू, बुरा न मानियेगा। खैराबाद के गाँव की गँवार औरत के साथ कैलासो जैसा पढ़ा-लिखा आदमी कैसे निर्वाह करेगा। न अंग्रेजी जाने न बंगला और गाने-रोने के नाम पर वही ससुरी 'छोटी बड़ी सुइयाँ रे जाली का मोरा काढ़ना।' कोई पढ़ा-लिखा ये गँवारपन सहन नहीं कर सकता है। (नागर 2016:92)

नयी चेतना से प्रेरित युवक अंग्रेजों की तरह ही अपनी पत्नी के साथ स्वच्छंदता से रहना चाहने लगे थे। युवा पीढ़ी को यह बात बुरी नहीं मालूम होती थी। पर बुजुर्ग ऐसी हरकत सहन नहीं कर पा रहे थे। दो पीढ़ियों में इसकी वजह से टकरार देखने को मिल रहा था। विपिन एक अंग्रेजी पोशक पहने स्वामी-स्त्री को स्वच्छंद होकर घूमते देखकर खुशी जाहिर करता है-

> सजे बजे कोट पतलूनधारी एक जवान बाबू, अपनी युवा पत्नी के साथ छड़ी लिए बड़ी शान से जा रहे थे। उन्हें देखते ही विपिन जोश से बोला: "ये देखिए ये हजबेंड एंड बाइफ कैसी आजादी के साथ घूम रहे हैंगे। इसमें बताइये भला क्या बुरी बात है? (नागर 2016:94)

भारतीय समाज में परिवर्तन लाने में ब्राह्म समाज का बहुत बड़ा योगदान है। ब्राह्म समाज ने बहुत से प्रगतिशील कदम उठाये थे। इस उपन्यास में आये निम्नलिखित संवाद से इस बात की पुष्टि होती है-

> हाँ यार, बात तो सही है तुम्हारी। केशवचंद्र सेन बाबू के ब्राह्मो समाज ने हुलिया ही बदल दी है। गैर बिरादरियों के लड़के-लड़कियों की शादियाँ होने लगी हैं। विधवाओं की शादियाँ होने लगीं। जनेऊ की रसम उड़ा दी। हिंदू सोसायटी में कभी ऐसा रेवोल्यूशन नहीं आया जैसा आज आ रहा है। (नागर 2016:94)

भारत में कलकत्ता अंग्रेजों की राजधानी थी। अंग्रेजों का संपर्क बंगाल से ही पहले पहल हुआ था। इस कारण पाश्चत्य विचारधारा और चेतना का प्रभाव बंगाल खासकर कलकत्ता में सबसे अधिक पड़ा था। इस कारण कलकत्ता में रहने वाले लोग पाश्चात्य समाज में मान्य आचरण सरलता से कर सकते थे। बंसीधर विपिन से कहता है-

> कलकत्ते में विलायती तहजीबो-तमद्दुन का दरवाजा लगभग एक सदी पहले खुल चुका है। इसलिए तुम यहाँ तक सोचने का हौसला रख सकते हो। मगर हमारा लखनऊ या नवाबगंज तो अभी कलकत्ते से दो हजार साल पिछड़े हुए हैं। (नागर 2016:99)

ब्राह्म समाज में शामिल परिवारों में ब्याह कर आयी बहुओं को मजबूर होकर अपने पूर्व के संस्कार छोड़ने पड़ते थे। उपन्यास में कुछ ऐसी बहुओं के संदर्भ में वर्णन आता है-

> नवीन ब्राह्म वातावरण की सौभाग्यवती सुचरिताबाला सान्याल अपने पूर्व गोकुलमणि जीवन के संस्कारों को पति गृह के मीठे-व्यंग्य-विनोदों के कारण छोड़ने को बाध्य हो रही थीं। चंपकलता भी अपने पति की रोक-टोक पर वैसे ही बाध्य होकर बदल रही थी। गोकुल उर्फ सुचरिता का एकादशी का व्रत छूटा, और उसके साथ ही साल भर होते रहने वाले अनेक उपवासों की कहानी भी बीत गयी। लगभग ऐसा ही हाल चंपकलता का भी हुआ। हरतालिका, बटसावित्री आदि अनेक व्रत उपवास उसे मजबूर होकर छोड़ने पड़े। (नागर 2016:115)

युवा पीढ़ी नयी विचारधारा से प्रभावित तो हो रही थी पर बहुत से युवा अपने पुराने संस्कारों को इतनी आसानी से त्याग नहीं पा रहे थे। जिन्हें बचपन से ही नया समाज मिला था,

उनके लिए तो यह समस्या नहीं थी । पर जिन्हें बाद में ऐसा परिवेश मिला था, उनके लिए अपने पूर्व संस्कारों को छोड़ पाना कठिन था। बंसीधर भी दूसरे वर्ग के युवाओं में आता है और उसे भी इस इस मुश्किल का सामना करना पड़ा था-

> बंसी के मन में आस्था-अनास्था के मिश्र संस्कार एक साथ उभरे । एक तरफ तो वह अपनी पत्नी को आधुनिक बनाने का तीव्र आग्रह रखता है, और दूसरे ओर माता देवी जगदंबा जैसे शब्द कान में पड़ते ही उसकी आस्था चंद्रिका मैया के साथ जुड़ जाती है । (नागर 2016:116)

युवा पीढ़ी समझ रही थी कि वर्तमान परिस्थिति में अंग्रेजी शिक्षा का बहुत महत्व है । पर पुरानी पीढ़ी उसे म्लेच्छों की भाषा करार देकर उसे सीखने के विरोध कर रही थी । ऐसा ही एक प्रसंग इस उपन्यास में भी आता है-

> रसूलपुर ग्रंट ग्राम की ब्राह्मण बिरादरी में फिर श्याम किशोर और उसके पिता को लेकर हाय हत्या शुरू होने लगी- "ब्राह्मण होके आज म्लेच्छों की भाषा पढ़ेगा, कल ईसाई मते की बातें चलाकर हम सब का धर्म भ्रष्ट करेगा । इनको बिरादरी से बाहर निकाल देओ । (नागर 2016:161)

अंग्रेज अपने समर्थक भारतीयों को बहुत सी सुख-सुविधाएँ और उपाधियाँ देते थे । इनमें एक उपाधि थी- रायसाहब की उपाधि । अपने प्रति वफादार रहने का यह इनाम था । लोग ऐसी उपाधियाँ पाने की ख्वाहिश में अंग्रेजों के वफादार बने रहते थे । ऐसी उपाधियाँ सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाती थीं । यही कारण था कि लोग इन उपाधियों के लिए लालायित रहते थे । इस उपन्यास में बंसीधर को अंग्रेजों के करीबी बने रहने के इनाम स्वरूप रायसाहब की उपाधि दी जाती है जो उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है-

> पहली जनवरी सन् 1886 का दिन । नौ बजे की डाक से इलाहाबाद का 'पायनियर' अखबार आया । अंग्रेजी पढ़े लिखों की दुनिया में चमक आ गयी, बाबू बंसीधर टंडन को रायसाहब का खिताब मिला था । देखते ही देखते शहर के पढ़े लिखों के हुजूम नये

> रायसाहब को बधाई देने आने लगे। चौक की बिरादरी भरी गलियों में यह शोर मच गया कि 'तनकुन हेड माश्टर' रायसाहब हो गये। (नागर 2016:271)

पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी को समझ में आ गया था कि लड़के-लड़कियों का विवाह बालिग होने पर करना चाहिए और विवाह में दिखावा करने के लिए फिजूलखर्ची नहीं करनी चाहिए। वे सामजिक सुधार का प्रयास करने लगे थे। इस उपन्यास में कौशल्या ऐसा ही प्रयास करती है-

> कौशल्या ने पढ़ी-लिखी लड़कियों में जागृति लाने के लिए उनकी सभा-गोष्ठियों का चलन भी तेजी से आगे बढ़ाया है। लड़की-लड़कों के विवाह उनके सयाने होने पर ही करने चाहिए। विवाह आदि उत्सवों में बहुत धन बेकार खर्च होता है, दिखावे की इस फिजूलखर्ची को रोकना चाहिए। (नागर 2016:338)

'ढाई घर' में चित्रित अंग्रेजकालीन भारत

यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। चौरासी वर्ष के वृद्ध कथावाचक भास्कर राय अपने पिता और चाचाओं की कहानी इस उपन्यास में कहते हैं, जिसके साथ उनकी भी कहानी अनुस्यूत है-

> मेरा नाम भास्कर राय है। मैं उत्तर प्रदेश के पश्चिमी इलाके के एक पुराने खाते-पीते राय खानदान का अंतिम राय हूँ। (किशोर 2017:13)

भारत के स्वतंत्र होने के बाद जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया था। इसी कारण भास्कर राय अपने आप को अंतिम राय अर्थात् जमींदार कहते हैं। जमींदारी उन्मूलन को स्पष्ट करते हुए भास्कर राय कहते हैं-

> विरासत और सियासत दोनों ही नहीं रहे। (किशोर 2017:13)

भारतीय जमींदार अंग्रेजों के केवल राजनीतिक गुलाम ही नहीं थे, मानसिक गुलाम भी थे। अंग्रेजों द्वारा इस्तेमाल की गयी चींजें खरीदकर वे गर्व करते थे कि यह अमुक अंग्रेज अफसर की उतरन है। भास्कर राय अपने परिवार के बारे में कहते हैं-

> हमारे घर में अंग्रेजों की बहुत सी उतरनें थीं। उस उतरन को हम सौभाग्य की तरह लेते थे। हर एक को गर्व के साथ दिखाते थे। चाहे चैस्टर ड्राअर हो या सिंगार मेज या फिर फर्श या अन्य सजावट की चींजें। बर्तन को छोड़कर सब कुछ। हर चींज पर उस अंग्रेज अफसर की चिट लगी थी, जिससे खरीदी गयी थी। अमुक जज...अमुक कलक्टर...अमुक कमिश्नर। (किशोर 2017:15)

अंग्रेजी राज में भारतीय धनिक वर्ग भले ही अंग्रेजों की उतरनें रखना अपना सौभाग्य मानते रहे हो पर वे खान-पान में कट्टर ही थे। भास्कर राय अपने पिता बड़े राय के खान-पान में कट्टर हिंदू होने का वर्णन करते हुए कहते हैं-

> बड़े राय फारसी, अंग्रेजी और उर्दू अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने एंट्रेंस तक पढ़ा था। अंग्रेजों में बैठते थे। सूट पहनते थे। लेकिन न शराब पीते थे, और न गौश्त खाते थे। अलबत्ता क्लब जाते थे। ब्रिज खेलते थे। किसी का छुआ न पानी पीते थे और न खाना खाते थे। गाँधी जी से उनकी नाराजगी का एक यह कारण भी था। कभी जब क्लब में या रईसों के यहाँ डिनर होता था, तो हलवाई का बना देशी खाना एक पण्डित उनके लिए अलग से लगा देता था। पीने का पानी भी कलई के बर्तनों में तौलिये से ढककर अलग मेज पर रख दिया जाता था। इन सब बातों को वह पूरे विश्वास के साथ स्वीकार करके चलते थे कि ऐसा ही हो रहा है। क्लब में मुसलमान भी नौकर थे, ईसाई भी थे और दूसरी जातों के भी थे। पर उनके लिए ब्राह्मण का लड़का रखा गया था। (किशोर 2017:16)

इस प्रकार अपने आपको अलग-थलग कर लेने पर लोग मजाक में कहते थे कि हरी राय ने खुद को अछूत बना लिया है -

> इसका नतीजा था कि दूसरे धर्मों और जातियों के ऐसे लोग जिनका आपस में खान-पान था आगे-पीछे हँसकर कहते थे कि हम क्या करें हरी राय साहब को हमने तो अछूत बनाया नहीं उन्होंने अपने आप ही अपने को अछूत बना लिया । (किशोर 2017:16)

अंग्रेज भक्त भारतीयों को अंग्रेजों के साथ संपर्क रखना, उनके संसर्ग में रहना और किसी भी तरह उनसे संबंध बनाना गर्व की अनुभूति से भर देता था । राय परिवार भी अरुण राय के अंग्रेज अध्यापकों से शिक्षा ग्रहण करने पर गर्वित थे-

> इस बात पर भी लोगों को गर्व था कि अरुण के मास्टर अंग्रेज हैं। (किशोर 2017:257)

उपन्यास में एक जगह अंग्रेजी राज के जमाने की वजन की ईकाइयों का भी उल्लेख है-

> तब तोल के बटखरे मन, सेर, छटाँक ही थे । (किशोर 2017:16)

बचपन में भास्कर राय पढ़ाई-लिखाई में गंभीर नहीं थे । पिता ने एक बार भास्कर राय के सामने भारत का भविष्य स्पष्ट करते हुए कहा था कि इस देश में आने वाले कल में शिक्षित लोगों का बोलबाला होगा । अत: उसे पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान देना चाहिए-

> तुम्हें मालूम है आने वाला वक्त कैसा होगा? शायद नहीं, तुम लोग जो नौकरों पर हुकूमत चलाते हो, गाड़ियों पर घूमते हो वह सब कुछ नहीं रहेगा । रहेगा तो उन लोगों के पास जो बाइल्म होंगे । जब हम लोगों को यह एशो अशरत नसीब हुई थी, तब पढ़ाई-लिखाई इसका मयार नहीं था । खानदानियत थी, स्वामीभक्ति थी । सरकार-ए-बर्तानिया की नजर में खून और नस्ल को तरजीह दी जाती थी । आने वाला वक्त वैसा नहीं होगा । इसलिए कहता हूँ पढ़ो। पढ़ाई ही वह रोशनी होगी, जो तुम्हें रास्ता दिखायेगी । (किशोर 2017:18-19)

हमारे समाज में स्त्री शिक्षा हमेशा से उपेक्षित रही है। अंग्रेजी राज में भी यही हालत थी। भास्कर राय अपनी अनपढ़ माँ के बारे में बताते हैं-

> तब मेरी माँ जिंदा थी। एक निहायत सीधी और अहंकार विहीन महिला। यहाँ तक कि गिनना भी नहीं जानती थी। ...माँ के पास अठमासी होती थी। मुझे तुड़ाने के लिए दे देती थी। उन्हें आधे पौने दाम ही वापिस करता था। जहाँ तक मुझे याद है उन दिनों एक अठमासी की ऐवज में अठारह कलदार मिलते थे। कलदार माने चाँदी का रुपया। (किशोर 2017:20-21)

जब स्त्री आर्थिक रूप से पुरुष पर आश्रित होती है, तब उसे पुरुष के अधीन रहना पड़ता है। समाज में उसका कोई रुतबा नहीं होता। ऐसी स्थिति में मजबूर होकर उसे पुरुष की उचित-अनुचित हर बात माननी पड़ती है। भास्कर राय की माँ को अपने पति के मेहमानों के लिए आधी रात को भी भोजन तैयार करना पड़ता था। भास्कर राय के पिता अर्थात् बड़े राय की अपनी पत्नी के प्रति कैसा आचरण था इसको स्पष्ट करते हुए भास्कर राय कहते हैं-

> माँ की आँखें आधी रोने में गयी थीं और आधी चूल्हा फूँकने में। यह बात सबको अखरती थी कि माँ चूल्हा फूँकें। चार-चार मिस्सर थे। एक बनाता था दूसरा खिलाता था। एक दोपहर का खाना बनाता था दूसरा शाम का। लेकिन जब कभी रात-बेरात मेहमान आ जाते थे, तो माँ को खुद चूल्हा फूँकना पड़ता था। यह संभव नहीं था कि मेहमान बिना खाये-पीये सो जायें। चाहे रात के बारह बजे हो या दो...कई बार माँ बनाकर तैयार करती थीं और मेहमान खाकर आये हुए होते थे। (किशोर 2017:22)

जमींदार वर्ग को अपने पद और रुतबे का बहुत अहंकार था। वे अपनी प्रजा को हमेशा अपने जूते के नीचे रखना चाहते थे। एक बार मझले राय के घोड़े पर एक गाँव से गुजरते वक्त उन्हें न पहचानने के कारण एक बारात के बाराती बारात रोककर उनके सम्मान में खड़े नहीं हुए। इस

पर मझले राय ने उन बारातियों को पाँच-पाँच जूते लगाने का हुक्म दिया और उनको डराया-धमकाया। इस घटना के बारे में भास्कर राय कहते हैं-

> मझले राय को हुक्मउदूली पसंद नहीं थी। वे बोले- "तुम लोगों को गाँव में रहना है या नहीं।" वे फिर भी तैयार नहीं हुए। थोड़ी दूर पर डेरा था। वहाँ से अपने आदमियों को बुलवाया। जितने लोग वहाँ मौजूद थे शुरू से आखिर तक सबको जूते लगवाये। जिन्होंने हुक्मउदूली की थी,उन्हें नंगा कराकर गुदा में डण्डा चढ़वाया। (किशोर 2017:36)

प्रजा से लगान वसूल करने में जमींदार किस कठोरता का सहारा लेते थे और उन पर कितना अमानवीय अत्याचार करते थे इसका वर्णन भास्कर राय के द्वारा उपन्यासकार ने किया है-

> आसामी सवेरे से आना शुरू हो जाते थे।...लात लगते ही वह उल्टे मुँह जमीन पर कुत्ते की तरह हाथ-पाँव सहित पसर जाता और मुँह से खून की धार बहने लगती। कभी-कभी दाँत तक टूट जाता। कुछ लोगों को डण्डा-डोली करके लाया जाता। वे लोग इतने भयभीत होते जैसे उन्हें लोककथा के किसी दानव के भोजन के लिए ले जाया जा रहा हो। ये लोग पिटते भी और बड़े दीवान जी के पाँव भी पड़ते। (किशोर 2017:37-38)

भारत में अंग्रेजों ने ही रेल चलायी थी। प्रारंभ में लोग रेल में बैठना अपवित्र मानते थे। रेल को लेकर लोगों की धारण कुछ इस प्रकार थी-

> जब कहीं लाइन बिछती थी तो लोग समझते थे जरूर कोई मुसीबत आने वाली है। अन्य शहरों की सब अलाय-वलाय इस रेलगाड़ी में बैठकर यहाँ भी आ जायेगी। अंग्रेज जानकर सारी अलाय-बलाय गाँवों में भेज रहे हैं, जिससे वह उन्हें तंग न करे। जब रेलगाड़ी चलती थी तो लोग उसे काली-कलकत्ते वाली का अवतार समझते थे। पूजा

> करते थे।...हाँलाकि शुरू में लोग रेलगाड़ी में बैठना अपवित्र मानते थे। जहाँ अपवित्र मानते थे वहीं उसे काली का रूप भी कहते थे। रेल में सफर करते हुए पानी पीना तक हराम माना जाता था। लोग कई-कई दिनों तक पूरा का पूरा सफर बिना पानी पिये और मुँह जूठा किये कर आते थे। (किशोर 2017:42)

जमींदार वर्ग का दबदबा प्रजा पर जिस प्रकार छाया रहता था, उसी प्रकार जमींदार वर्ग पर अंग्रेजों का दबदबा भी छाया रहता था। अंग्रेज जमींदार के लिए प्रभु थे, अपने ऊँचे नस्ल के अहंकार में चूर। किशोरावस्था के दिनों में एक बार भास्कर राय का गिग (घोड़ा गाड़ी) अंग्रेज कलक्टर की बीवी की गाड़ी से टकरा जाता है और गाड़ी पलट जाती है। कलक्टर की पत्नी को चोट भी आती है। भास्कर राय और उनके साथी अँधेरे का फायदा उठाकर गिग समेत भाग आते हैं। इस बात का जब बड़े राय को पता चलता है, तब वे भास्कर को डाँटते हुए जो बातें कहते हैं वह जमींदार वर्ग पर अंग्रेजों के आतंक को व्यक्त करते हैं-

> उसे पता चल गया कि टक्कर हमारे फरजंद ने मारी है तो वह हमारे साथ तो जो करेगा सो करेगा ही तुम्हें उल्टा लटकवा कर बेंतों से पिटवायेगा। (किशोर 2017:46)

अंग्रेज भारतीयों को किस लायक समझते थे इसको व्यक्त करते हुए पौवल प्राइस के अंग्रेज मित्र उनसे कहते हैं-

> तुम इन हिंदुस्तानियों से क्यों दोस्ती रखते हो। वे 'यूज एण्ड थ्रो' के अलावा और किसी लायक नहीं। (किशोर 2017: 58)

मझले राय को बच्चा नहीं हुआ था। इस कारण उन्होंने अपनी पत्नी में क्या कमी है जानने के लिए एक अंग्रेज लेडी डाक्टर को दिखाया। डाक्टर ने बताया कि उनकी पत्नी में कोई कमी नहीं है, वे एक बार जाँच करा लें। इस बात से मझले राय बड़े नाराज हुए। उनकी मनस्थिति के बारे में भास्कर राय लिखते हैं-

> मझले राय मेम की इस बात से बहुत नाराज हो गये थे। यही नहीं उन्हें मेम की बेशर्मी पर बड़ा आश्चर्य हुआ था। उसने औरत होकर यह बात उनसे कही कैसे? लेकिन सुनकर चुपचाप चले आये। अगर अँग्रेज न हुई होती तो वे उसे जरूर जली-कटी सुनाकर आते। बस वे इतना कह पाये "मैडम यह हिंदुस्तान है, विलायत नहीं।" जैसे विलायत में पुरुष नामर्द होते हो। (किशोर 2017:69)

पुरुष कभी नहीं मान सकता कि कमी उसमें हो सकती है। मझले राय दूसरी शादी करके अपनी पहली पत्नी से दूर रहने लगते हैं। पर उन्हें दूसरी पत्नी से भी बच्चा नहीं होता। मझले राय अपनी पहली पत्नी का तिरस्कार करते हुए कहते हैं-

> वे जोर से हँसे- "तुम इतनी ज्ञानी कब से हो गयी। मैं जानता हूँ अगर मैं तुम पर प्रेम की नदियाँ भी उड़ेल दूँ तो तुम बच्चा नहीं जन सकती।"
>
> "नहीं मैं जन सकती हूँ- मुझ पर यह दोष न लगाइये।"
>
> "असल बाप की हो तो जन कर दिखाओ।"
>
> "तुम्हारे बिना?"
>
> "हाँ हाँ, मेरे बिना।"
>
> .....
>
> "हाँ, मैं देखूँगा तुम्हारी वह मेम जिसका तुमने पेट भरा है तब क्या कहेगी जब पतिव्रता गँवाकर भी बच्चा पैदा नहीं कर पाओगी?" (किशोर 2017:78)

इसके बाद मझले राय की पत्नी बीमार रहने लगती है। कुछ महीनों बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। बाद में पता चलता है कि उसे तीन महीने का गर्भ था। उसने पतिव्रता भंग करके साबित कर दिया था कि वह माँ बन सकती है। इसके बाद एक बार छोटे राय और मझले राय में बहस होती है। मझले राय अपनी पहली पत्नी को कुलटा कहते हैं। मझले राय आगे कहते हैं-

> मैंने चुनौती दी तो उसने मान ली- वाह री पतिव्रता। मैं जानना चाहता हूँ वह बच्चा किसका था?
>
> वह न मानती तो तुम जिंदगी भर मर्द और बेबोझ बने रहते। तुम्ह उन्हें कोसते रहते। क्योंकि वह औरत निपूती और नि:संतान थी। कोई भी स्त्री जीवन भर नि:संतान रहकर जी सकती है पर बाँझ होने का झूठा लांछन बर्दाश्त नहीं कर सकती। (किशोर 2017:87)

अंग्रेजी राज में भारतवर्ष में अफीम-कोकीन का विष घर-घर व्याप गया था। इस उपन्यास में किशन बाबू के संदर्भ में कोकीन और अफीम का वर्णन आता है-

> किशन बाबू को पान में कोकीन रखकर खाने का चस्का पड़ गया था। एक ही पनवाड़ी था रामो, जो कोकीन का पान लगाता था।...कोकीन का पान खाकर जबान ऐंठ जाती थी और आँखों में सुरूर आ जाता था।...उस जमाने में कोकीन का पान पाँच रुपये का आता था। बाद में जब दाम बढ़ गये तो कोकीन का पान खाना मुश्किल हो गया। तब वे अफीम पर उतर आये। रोज चार आना भर अफीम खाते थे। (किशोर 2017:109)

इस उपन्यास में गाँधी जी के अहिंसा आंदोलन और भगत सिंह के सशस्त्र आंदोलन का भी वर्णन हुआ है। उपन्यास में कहा गया है कि जगन, जो कि उपन्यास का एक पात्र हैं, उन्हें गाँधी जी की यह जानकारी बाद में मिली थी-

> यह उन्हें बाद में पता चला कि विदेश में पढ़कर लौटने वाले नौजवानों के बारे में गाँधी जी जानकारी रखते थे। उनका जनसंपर्क इतना जबरदस्त था कि हर नौजवान को उनका संदेश जहाज पर या विलायत में ही मिल जाता था। (किशोर 2017:206)

भगत सिंह भारत माता को पराधीनता की बेड़ियों से आजाद करने के लिए किस हद तक जुनूनी थे यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इस उपन्यास में भगत सिंह कहते हैं-

> किसका दिन किसकी रात अब तो एक ही लौ लगी है हिंदुस्तान के लिए आजादी और पेटों के लिए रोटी । आप लोग (अहिंसावादी) आजादी को पुरातत्त्व विज्ञानियों की तरह धीरे-धीरे उकेर रहे हैं । हम चाहते हैं, इधर चाक करें और उधर आजादी का अण्डा बाहर आ जाये । मुल्क उनके पास हो जिनका है । रोटी उनके घर में हो जो उसे कमाते हैं । अभी तो जनाब देश भी बँधा पड़ा है और रोटी भी । (किशोर 2017:208)

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि दोनों उपन्यासों का कथ्य अलग-अलग वर्ग से संबंधित है । 'करवट' जहाँ उभरते मध्यवर्ग का चित्रण करता है वही 'ढाई घर' उच्चवर्ग का । 'करवट' में हम देखते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा का आश्रय लेकर एक मध्यवर्ग उभर रहा था । अंग्रेजों के आने के पहले भारत में मध्यवर्ग का अस्तित्व नहीं था। यह मध्यवर्ग जो अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित था,पाश्चात्य विचारधाराओं से परिचित होकर भारतीय समाज-व्यवस्था को अंदर से बदलाव लाने लगा था । 'ढाई घर' उपन्यास में हम जमींदारों के अंग्रेजों से संबंधों को देख सकते हैं । जमींदार जिस प्रकार प्रजा के लिए खौफ का कारण थे, उसी प्रकार अंग्रेज भी जमींदारों के लिए खौफ के कारण थे । जमींदार अंग्रेजों के लिए लगान वसूल करके अंग्रेजों की अर्थनीति और उनका भारत में रहने का उद्देश्य पूरा करते थे । इस प्रक्रिया में दीन-हीन किसानों के साथ अमानवीय अत्याचार होता था । कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'करवट' और 'ढाई घर' में उपन्यासकारों ने अंग्रेज़कालीन भारतवर्ष तथा बदलावों का यथार्थ चित्रण किया है।

ग्रंथ-सूची

किशोर, गिरिराज. ढाई घर. द्वितीय आवृत्ति. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज, 2017.

तिवारी, डॉ. रामचंद्र. हिंदी का गद्य-साहित्य. नवम् संस्करण . वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2014.

नागर, अमृतलाल. करवट. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज, 2016.

राय, गोपाल. हिंदी उपन्यास का इतिहास. छठा संस्करण. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016.

संपर्क-सूत्र:
सहायक प्राध्यापक
संदिकै बालिका महाविद्यालय
ई-मेइल: 666mandal@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 54-62

कामाख्या शक्तिपीठ और लोक-विश्वास

✍ डॉ. प्रीति बैश्य

शोध-सार:

कामाख्या शक्ति पीठ की प्रसिद्धि समूचे भारतवर्ष में व्याप्त है। कामाख्या की उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद पाये जाते हैं। कामाख्या देवी को लेकर प्रचलित किंवदन्तियों में से नरकासुर से संबन्धित किंवदंती विशेष रूप से ख्यात है। कामाख्या मंदिर में मनाये जाने वाले विविध त्योहार, उत्सव-अनुष्ठानों के साथ लोगों के लोक-विश्वास भी जुड़े हैं। इन त्योहारों में अंबुबाची, 'देल पूजा' (शिव पूजा) आदि के विशेष महत्व है।

बीज-शब्द: *कामाख्या, शक्ति पीठ, किंवदंती, त्योहार, लोक-विश्वास*

प्रस्तावना :

कामाख्या शक्तिपीठ विविध तंत्र-मंत्र, योग-साधना के सिद्ध स्थान है। यह असम राज्य के कामरूप जिले के गुवाहाटी के नीलाचल पहाड़ पर स्थित है। समूचे भारतवर्ष में सती के इक्यावन शक्तिपीठों में से कामाख्या भैरवी का शक्तिपीठ अन्यतम है। लोक-विश्वास है कि यहीं पर भैरवी का योनि-कुंड स्थित है।

अध्ययन की पद्धति:

प्रस्तुत अध्ययन की पद्धति व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक है। इस अध्ययन में क्षेत्र अध्ययन करते हुए तथ्य संग्रह किये गये हैं और साक्षातकार, प्रश्नोत्तर आदि पद्धतियों की भी सहायता ली गयी है। इसमें कामाख्या देवी और कामाख्या मंदिर से संबन्धित विविध आलोचनात्मक ग्रन्थों की सहायता भी ली गयी हैं। ग्रंथसूची तथा उद्धरणों में यथा संभव 'आधुनिक भाषा संस्था' द्वारा निर्धारित एम. एल.ए. के छठे संस्करण का प्रयोग किया गया है।

असमीया उद्धरणों के लिप्यंतरण में असमीया 'य' के लिए हिन्दी में भी 'य' रखा गया है। असमीया 'य' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिप्यंतरण में 'य़' रखा गया है । बाकी वर्णों का लिप्यंतरण हु-ब-हु रूप में किया गया है ।

विश्लेषण :

कामाख्या मंदिर शक्ति की देवी सती का मंदिर है । भक्तों में यह विश्वास है कि माँ कामाख्या सब की मनोकामना पूर्ण करती है । यह महान शक्तिपीठ अनेक देश-विदेश के श्रद्धालुओं और तांत्रिकों के आकर्षण का केंद्रस्थल है ।

अनेक विद्वानों ने कामाख्या शब्द पर विचार व्यक्त किया है । डॉ. बाणीकांत काकति कामाख्या का 'कामा' शब्द पर विचार करते हुए लिखते हैं-

> As the innumerable names of the goddess are mostly names of local goddesses both Aryan and non-Aryan, it may be suspected that the formation *Kama* in *Kamakhya* is of extra-Aryan origin. There is a strong suggestion of its correspondence to Austric formations like the following: *Kamoi*, Demon; *Kamoit*, Devil : *Komin*, Grave; *Kamet*, Corpse (Khasi) ; *Kamru*, a god of the Santals. (काकति 2004:38)

अर्थात, देवी के असंख्य नामों में ज्यादातर आर्य और अनार्य दोनों के स्थानीय देवी के नाम हैं, इसलिए यह संदेह हो सकता है कि कामाख्या के कामा शब्द का गठन आर्य मूल से नहीं हुआ है । ऑष्ट्रिक संरचनाओं में इसकी समानता का एक मजबूत सुझाव निम्नलिखित है: कमोई, दानव; कमोईट, शैतान; कोमिन, श्मशान; कामेट, लाश (खासी) ; कामरु, संथाल लोगों के एक देवता है ।

बड़ो-कछारी लोग 'बाथौ देवता'(=शिव) की पूजा के साथ ही 'खाम माइखा'(=कामाख्या) की पूजा करते हैं । खेराय पूजा की वेदी में भी कामाख्या की वेदी निर्मित की जाती है ।

राजमोहन नाथ ने भी 'का-माइ-खा'(=कामाख्या) शब्द पर विचार व्यक्त किया है ।

खासी भाषा में 'खा' शब्द का अर्थ प्रसवकारिणी है तथा 'का-माइ-खा' का अर्थ आद्या

प्रसवकारिणी मातृ है। वही आदि मातृ 'कामाइखा' या 'कामाख्या' है । (बरदलै 2014:152)

कामाख्या की उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद मिलते हैं । 'कालिका पुराण' में कामाख्या की उत्पत्ति के बारे में इसतरह उल्लिखित है - जब ब्रह्मा और विष्णु सृष्टि कार्य में रत थे, तब शिव सृष्टि कार्य से दूर तपस्या में तल्लीन थे । कुछ उपाय न सूझकर ब्रह्मा मानस पुत्र दक्ष को जगत-जननी महामाया की पूजा करने का उपदेश देते हुए कहते हैं कि वह इस प्रकार प्रार्थना करे कि महामाया उसकी बेटी के रूप में जन्म लेकर शिव पत्नी के रूप में प्रसिद्ध हो जाय । इसके लिए दक्ष अनेक वर्षों की कठोर तपस्या करता है, जिससे संतुष्ट होकर महामाया आविर्भाव होती हैं और कहती हैं कि वे दक्ष कन्या के रूप में जन्म लेकर शिव की पत्नी बनेगी लेकिन दक्ष द्वारा अनादृत होने पर शरीर त्याग देगी । प्रतिज्ञानुसार महामाया दक्ष कन्या के रूप में जन्म लेकर शिव की पत्नी बनती हैं और बाद में सती के रूप में प्रसिद्ध होती है । कैलाश निवासी शिव द्वारा यथोचित सम्मान न मिलने पर दक्ष बहुत अपमान महसूस करता है । दूसरे देवताओं की अपेक्षा शिव को नीचा दिखाने के उद्देश्य से कुछ दिनों के बाद दक्ष एक यज्ञ का आयोजन करता है, जिसमें शिव और सती को बुलाया नहीं जाता। शिव दक्ष द्वारा आयोजित यज्ञ में जाने के लिए मना करने पर सती अत्यंत क्रोधित हो उठती हैं । वे तीसरी आँख से आग उगलने लगती हैं और धीरे-धीरे श्यामा मूर्ति में परिवर्तित हो जाती हैं । शिव उससे भागकर जिधर भी जाना चाहते हैं, सती उधर ही दशमहाविद्या का रूप धारण करती हुई उनके रास्ता रोके सामने आ जाती हैं । शिव भयभीत होकर सती के रास्ते से हट जाते हैं । बिन बुलाई सती को यज्ञ में देखकर दक्ष क्रोधित हो उठता है और शिव की निंदा करने लगता है । सती पति की निंदा सहन न कर पाने के कारण दु:ख में विह्वल होकर यज्ञ-शाला में ही प्राण त्याग देती हैं । यह खबर सुनकर शिव यज्ञ-शाला में जा पहुँचे । वे रौद्र रूप धारण करते हुए राजा दक्ष का मस्तक छेद कर देते हैं। लेकिन दक्ष की पत्नी बीरिणी की स्तुति से उसे बकरे का मस्तक प्रदान करके प्राणदान देते हैं । शिव सती के शरीर को कंधे में उठाकर उन्मत्त की भाँति त्रिभुवन में घूमने लगते हैं । देवतागण इससे भयभीत होकर शिव के क्रोध को शांत करने के लिए सृष्टि रक्षार्थ हेतु विष्णु से प्रार्थना करने लगते हैं । विष्णु जगत के कल्याण के लिए सुदर्शन चक्र से सती के देह को धीरे-धीरे इक्यावन खंडों में काटकर विभक्त करते हैं । सती के अंग जहाँ-जहाँ गिरे

वहाँ-वहाँ शक्ति पीठ बने। 'तंत्र सौदामिनी' के अनुसार इनकी संख्या बावन हैं, लेकिन पचास नामों का ही उल्लेख मिलता हैं- हिंगुला पीठ, कश्मीर पीठ, जालंधर पीठ, प्रयाग पीठ, वाराणसी पीठ, रामगिरि पीठ, मिथिला पीठ, वृन्दावन पीठ, कुरुक्षेत्र पीठ, ज्वालामुखी पीठ, नेपाल पीठ, गण्डकी पीठ, विराट पीठ, मणिवेदीका पीठ, पंचाग पीठ, मानस पीठ, वक्रेश्वर पीठ, बहुला पीठ, त्रिस्रोता पीठ, काली पीठ, युगधा पीठ, रत्नावली पीठ, किरीट पीठ, नलहाटी पीठ, नंदीपुर पीठ, अट्टहास पीठ, वैद्यनाथ पीठ, मगध पीठ, कालमाधव पीठ, विरजा पीठ, प्रभास पीठ, भैरव पीठ, उज्जयिनी पीठ, विभास पीठ, करवीर पीठ, जनस्थान पीठ, कन्याकाश्रम पीठ, शुचि पीठ, गोदावरी पीठ, कर्णाट पीठ, श्रीपर्वत पीठ, कांची पीठ, कामगिरि पीठ(गुवाहाटी, असम), जयंती पीठ, त्रिपुरा पीठ, चत्वाल पीठ, सुगंधा पीठ, करतोया तट पीठ, यशोर पीठ, लंका पीठ (बरदलै 2014:303-304)। लोकविश्वास है कि सती का योनिमंडल कामरूप के कुब्जिकापीठ नामक पहाड़ पर गिरता है। महामाया देवी भी उसी योनि में विलीन हो जाती हैं तथा वह पहाड़ नीले रंग का हो जाता है।

देवी को कामाख्या कहे जाने के संदर्भ में डॉ. बाणीकांत काकति का विचार है कि देवी को कामाख्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि देवी शिव के साथ अपने काम को संतुष्ट करने के लिए चुपके से वहाँ आयी थीं-

> The mountain represented the body of Siva himself and when Sati's genital organ fell on it, the mountain turned blue. The goddess herself is called Kamakhya, because she came there secretly to satisfy her amour (*kama*) with him. (काकति 2004:34)

कामरूप का कामाख्या योनिपीठ एक विस्तृत भूखंड है। इसी में नीलाचल पहाड़ के अलावा मणिपर्वत, भस्माचल, ब्रह्मशैल आदि पर्वत भी हैं। कामाख्या की अष्टयोगिनियों के नाम हैं- गुप्तकामा, श्रीकामा, दीर्घेश्वरी, पाददुर्गा, बिंध्यबासिनी, कोटिश्वरी, बनस्था और भुबनेश्वरी।

नीलाचल पहाड़ के मनोभब गुफा के अंदर सती का योनिमंडल स्थित है। यह योनि लंबाई और चौड़ाई में इक्कीस उँगलियों के समान है और लाल रंग का है। कामरूप में सती की योनि गिरने के कारण कामरूप शक्तिरूपिणी महामाया का महापीठ है-

कामरूपं महापीठं सर्वकामफलप्रदम् (बरदलै 2014:141)

अन्यत्र देवी दुर्लभ हैं लेकिन कामरूप के घर-घर में देवी सुलभ हैं। नीलकूट पर्वत पर मस्तक नवाने से सौगुना फल प्राप्त होते हैं, जिसका उल्लेख 'कालिकापुराण' में इसप्रकार मिलता है-

अन्यत्र बिरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।।

ततः शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके॥ (देवी 2016:4)

कामाख्या देवी के रूप का वर्णन विविध ग्रन्थों में उपलब्ध है। 'योगिनीतंत्र' के अनुसार- कामाख्या देवी के सभी अंग सिंह के चर्म से आवृत हैं। वे विशाल उदरयुक्त, बाघ की खाल पहनी हुई, हरोदरा, परमानंद और अट्टहास महोत्सव से युक्त हैं। वे सुनंदा, लोकप्रीतिकारिणी, व्यक्त अष्टादसलोचना हैं-

सिंहचर्मोतरासंगा कामाख्या बिपुलोदरा
बैयाघ्रचर्मबसना यथा चैब हरोदरा
परमानन्दसंभूता साट्टहासा महोत्सवा
सुनन्दा लोकप्रीता च ब्यक्ताष्टादसलोचना (बरदलै 2014:161)

'योगिनीतंत्र' में ब्रह्मरूपा काली कैसे कामाख्या बनी, इसका वर्णन मिलता है। सृजन-कार्य सम्पन्न करने के बाद ब्रह्मा के मन में उत्पन्न हुए अहंकार को नष्ट करने के उद्देश्य से काली केशी नामक दानव का सृजन करती हैं। ब्रह्मा अहंकार त्याग करते हुए उसके वध के लिए विष्णु के साथ मिलकर विघ्नहारिणी काली देवी की स्तुति करने लगते हैं। काली देवी ब्रह्मा के अहंकार नष्ट होते देखकर हुंकार (बीजमंत्र) से केशी दानव का वध करती हैं। देवताओं ने जिस जगह पर केशी दानव के वध के लिए काली देवी की पूजा की थी, उसी जगह कामाख्या देवी के योनिमंडल की उत्पत्ति हुई, जो सभी जीवों का उद्गम स्थल है और वह फलदायक महापीठ भारतवर्ष में कामरूप नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कामाख्या देवी को लेकर अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें से नरकासुर से संबन्धित किंवदंती विशेष ख्यात है। नरकासुर देवी कामाख्या के अपूर्व रूप से मोहित होकर उनसे विवाह करने का प्रस्ताव देता है। देवी नरकासुर से छल करने के उद्देश्य से कहती हैं कि अगर वह एक ही

रात में उनके मंदिर तक चढ़ने के लिए पत्थर से सीढ़ियाँ निर्मित करने में समर्थ होगा तभी वे विवाह के प्रस्ताव को स्वीकारेंगी । देवी को जब यह ज्ञात हुआ कि आसुरिक शक्ति के प्रयोग से नरकासुर सुबह होने से पहले ही सीढ़ियाँ निर्माण करने का काम समाप्त करने वाला है, तब वे माया मुर्गी के द्वारा सुबह होने का संकेत देती हैं और नरकासुर की अभिलाषा पर पानी फेर देती हैं ।

नरक के बाद अनेक हिन्दू राजाओं ने कामरूप पर शासन किया । समय बीतने के साथ ही विविध प्राकृतिक विपदा, राष्ट्रविप्लव, धर्मविप्लव आदि के कारण कामाख्या मंदिर को पर्याप्त क्षति पहुँची । पूरा महापीठ जंगलों से भर गया था । लेकिन कामाख्या देवी के पीठ के रूप में लोग वहाँ पशु-पक्षियों के बलि चढ़ाकर पूजा करते रहें ।

उन दिनों कोच बिहार के राजा विश्वसिंह और शिवसिंह आहोम राजा के विरुद्ध लड़ाई लड़कर अपनी सेनाओं से बिछड़कर नीलाचल में जा पहुँचे । अपनी सेनाओं से पुनर्मिलन के लिए वे जाग्रत पीठ रूपी देवी से प्रार्थना करने लगे । देवी उसकी मनोकामना पूर्ण करती हैं । राजा विश्वसिंह को देवी की अपार महिमा चकित कर देती है और राजा कामाख्या मंदिर निर्माण कार्य में लग जाते हैं । सर्बानन्द राजकुमार के अनुसार कोच राजा विश्वसिंह ने 1515-40 ई. में कामाख्या मंदिर का निर्माण किया था । 'असम बुरंजी' के अनुसार 1553 ई. में कालापहाड़ ने यह मंदिर नष्ट किया था, लेकिन विश्वसिंह का बड़ा बेटा राजा नरनारायण और उसके भाई शुक्लध्वज ने 1565 ई. में इसका पुनर्निर्माण किया था । वे मंदिर निर्माण होने के बाद सात दिन आहार का त्याग करते हुए देवी की पूजा में रत थे । राजा नरनारायण ने तीन लाख होम, एक लाख भैंसा, बकरा, बत्तख, मछली, हिरन, कछुआ आदि के बलि चढ़ाने के साथ ताम्र फलक देकर 140 *पाइक* (आहोम शासनकाल में दूसरों की जमीन पर रहने वाली साधारण प्रजा) देवी के नाम पर उत्सर्ग किये थे। इसका वर्णन 'दरङ राजबंशावली' में इसप्रकार मिलता है-

महिष छागल हंस मत्स्य पारावत ।
हरिण कच्छप बलि उपहार यत ॥
पूजा कराइलंत चतु:षष्टि उपहारे ।
सप्तदिन आछे दुइ भाइ निराहारे ॥

तिनि लक्ष होम दिला एक लक्ष बलि।

सात कुड़ि पाइक दिला करि ताम्रफलि॥ (बरदलै 2014:162)

डॉ. सूर्यकुमार भूञाँ के 'स्वर्गदेव राजेश्वरसिंह' ग्रंथ के अनुसार कोच बिहार के राजा नरनारायण और शुक्लध्वज ने कामाख्या मंदिर के पुनर्निर्माण किया था और उद्घाटन करते समय सौ से भी अधिक नर बलि चढ़ाया था (बरदलै 2014:146) । आहोम राजा प्रतापसिंह के समय कर्मचान्द और आठ क़ैदी राजाओं को देवी के आगे बलि चढ़ाने का वर्णन भी इतिहास में उल्लिखित है (बरदलै 2014:363) । स्थानीय किंवदन्ती के अनुसार नरसिंह नामक एक राजा ने भी नीलाचल के भैरवी मंदिर में अपना शिर काटकर देवी को भेंट चढ़ाया था । कामाख्या मंदिर में दिये जानेवाले बलि को 'भोगी' कहा जाता था । कोई-कोई विद्वान मानते हैं कि गौरीनाथ सिंह ने अठारहवीं शती के अंत में नरबलि देने की प्रथा बंद कारवायी थी। आहोम राजाओं ने दसमहाबिद्या के मंदिर और शिव मंदिरों का संस्कार किया था । इन मंदिरों के संस्कार-साधन करने में राजा रामेश्वर प्रसाद, शिवसिंह आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

कामाख्या मंदिर के अंदर दुर्गा और महादेव के सोने की मूर्तियाँ विद्यमान हैं । नारायण, कल्कि अवतार, अन्नपूर्णा, देवी मनसा, केंदुकलाइ ब्राह्मण, बटुक भैरव, राजा नरनारायण और उसके भाई चिलाराय की मूर्तियाँ भी यहाँ संरक्षित हैं । विद्वानों के अनुसार कामाख्या मंदिर की मूर्तिकला का समय आठवीं शती से सत्रहवीं शती का है । नारायण की मूर्ति के नीचे के शिलालेख में यह खुदा हुआ है कि 1487 ई. में यह मंदिर निर्माण किया गया था । अंदर गुफा में कामाख्या देवी के साथ ही लक्ष्मी और सरस्वती के पीठस्थान भी हैं । कामाख्या मंदिर के पास काली, भैरवी, भुवनेश्वरी, तारा, षोड़शी(कामाख्या देवी), बगला, छिन्नमस्ता, धुमावती, कमला(लक्ष्मी), मातंगी(सरस्वती) के मंदिर हैं । भुवनेश्वरी का पीठ नीलाचल के शिखर पर है । भुवनेश्वरी महागौरी नाम से भी प्रसिद्ध थीं। इसके अलावा यहाँ सिद्धेश्वर, कामेश्वर, कौटिलिंग, अघोर और आम्रतकेश्वर शिव मंदिर भी स्थित हैं। कामाख्या के सिद्धेश्वर और कामेश्वर मंदिर शिवसिंह के समय निर्माण किये गये थे। कामाख्या

मंदिर के अगल-बगल में भैरव, गणेश आदि की मूर्तियाँ, सिंह, कमल आदि के नमूने से निर्मित पत्थर के प्रवेश द्वार विद्यमान हैं।

कामाख्या मंदिर के पूजा-पाठ 'बरपूजारी' उपाधि से विभूषित ब्राह्मण ही करते हैं। दूसरे ब्राह्मणगण कामाख्या धाम के चारों ओर स्थित दसमहाबिद्या के मंदिरों में पूजा करते हैं। भक्त सौभाग्यकुंड में हाथ-पैर धोकर गणेश देवता के दर्शन कर मंत्र उच्चारण से चलंता मूर्ति (दुर्गा और महादेव) और देवी कामाख्या की पूजा करते हैं। देवी दर्शन के बाद तीन बार मंदिर की परिक्रमा करते हैं। देवी को मांस-मछली, अंडे, चावल-दाल आदि का 'भोग' चढ़ाया जाता है। यहाँ भक्तों द्वारा अर्पित कबूतर, बत्तख, भैंसा, बकरे आदि का बलि दिया जाता है। विवाह, मुंडन, श्राद्ध, उपनयन, जातक कर्म आदि करने के लिए जो तीर्थयात्री दूर-दूर से आते हैं, ब्राह्मणगण पूजा-पाठ, होम-यज्ञ आदि के माध्यम से वे कार्य सम्पन्न कराते हैं।

कामाख्या मंदिर में विविध त्योहार मनाये जाते हैं। इन त्योहारों के साथ लोगों के कुछ विश्वास जुड़े होते हैं। इनमें अंबुबाची का विशेष महत्व है। यह उत्सव आषाढ़ महीने में मनाया जाता है। यह लोकविश्वास है कि उस समय धरती माँ तथा विश्व-माता कामाख्या रजस्वला होती हैं। अंबुबाची प्रवृति से अंबुबाची निवृत्ति तक मूल मंदिर बंद रहता है। अंबुबाची के तीन दिन देवी को 'भोग' नहीं चढ़ाया जाता, बल्कि फल चढ़ाया जाता है। अंबुबाची के समय देश-विदेश के बहुसंख्यक साधु, सन्यासी, यात्री आदि कामाख्या देवी के मंदिर का दर्शन करने के लिए आते हैं। अंबुबाची मेला कामाख्याधाम में बड़े ही उत्साह और धूम-धाम से आयोजित किया जाता है। इसके अलावा कामाख्याधाम में मनाये जानेवाले उत्सव-अनुष्ठानों में प्रमुख हैं- कुँवारी पूजा, पहान विवाह (शिव-पार्वती का विवाह), मनसा पूजा आदि। सावन और भादो की संक्रांति के दिन मनसा की पूजा की जाती है। विवाहोपयुक्त स्वामी की कामना और परिवार की मंगल कामना करते हुए कुँवारी लड़कियों द्वारा मनायी जाने वाली 'देल पूजा' (शिव पूजा) भी यहाँ विशेष महत्व रखता है। लोगों का मानना है कि कामाख्याधाम में देवी कुँवारी के रूप में पूजा ग्रहण करती हैं। यहाँ के निवासी दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, गणेश, बासंती, सूर्य, विश्वकर्मा आदि देव-देवियों की पूजा भी बड़े श्रद्धा से

करते हैं । वे सुहागिन पूजा, बिहु, फाग-उत्सव मनाते हैं । इनके अलावा अंबुबाची के समय कामाख्या क्षेत्र में रहनेवाली कुँवारी लड़कियों और औरतों द्वारा घर की श्रीवृद्धि के लिए 'साथा व्रत', पुत्र प्राप्ति और दीर्घायु के लिए 'मनंतरा व्रत', घर की मंगल कामना, कुँवारों का विवाह, धन की वृद्धि आदि के उद्देश्य से 'सुबचनी व्रत', जन्माष्टमी का व्रत आदि मनाते हैं ।

निष्कर्ष:

कामाख्या एक जाग्रत शक्ति पीठ है । लोक-विश्वास के अनुसार यहीं पर भैरवी की योनि-कुंड स्थित होने के कारण कामरूप शक्तिरूपिणी महामाया का महापीठ है । कामाख्या देवी को लेकर अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं । कामाख्या मंदिर में मनाये जानेवाले विविध त्योहारों में आषाढ़ महीने में मनाये जानेवाले अंबुबाची का विशेष महत्व है ।

ग्रंथ-सूची:

अंग्रेजी ग्रंथ

काकति, बाणीकान्त. The Mother Goddess Kamakhya. तीसरा.गुवाहाटी : असम प्रकाशन परिषद, 2004.

असमीया ग्रंथ

देवी, मीनाक्षी.कामाख्या धामर उत्सव-अनुष्ठान.पहला.गुवाहाटी:चन्द्र प्रकाश, 2016.

बरदलै, निर्म्मलप्रभा.देवी.छठा.गुवाहाटी:साहित्य प्रकाश, 2014.

संपर्क सूत्र :
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग, प्रागज्योतिष महाविद्यालय
गुवाहाटी (असम)
pritibaishya@pragjyotishcollege.ac.in

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 63-73

आधुनिक हिंदी काव्य में राम

✍ पूजा बरुवा

शोध-सार :

भारतीय सभ्यता-संस्कृति, साहित्य तथा धर्म ग्रंथों में राम एक ऐसे पात्र हैं, जो हमेशा से ही मानव जीवन के निकट रहे हैं , मनुष्य के लिए अनुकरणीय रहे हैं, जो अत्यंत ही प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं। रामकथा का इतिहास बहुत पुराना है। महर्षि वाल्मीकिकृत 'रामायण' में राजा राम क्षत्रिय धर्म और औदात्यपूर्ण संस्कृति के वाहक हैं, तो तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' के राम मर्यादा पुरूषोत्तम हैं। पर इस क्षेत्र में आधुनिक युगीन कवि निराला की कविता 'राम की शक्तिपूजा' और नरेश मेहता का खंडकाव्य 'संशय की एक रात' के राम भिन्न हैं। इन दोनों काव्य में दोनों कवियों ने राम नाम को तो उद्धृत किया है, पर नवीन रूप मे; क्योंकि ये राम अवतारी राम नहीं, बल्कि अपने समय के साधारण मानव हैं, जो अपने समय की परिस्तिथियों से अवसाद ग्रस्त हैं। युगीन राजनैतिक, सामाजिक और मानसिक स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए निराला और नरेश मेहता ने पुराण एवं इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं एवं मार्मिक प्रसंगों को आधार बनाकर 'राम की शक्तिपूजा' और 'संशय की एक रात' में आदर्श पुरुष, शील, शक्ति, सौंदर्य आदि गुणों से युक्त श्रीराम के मिथक में सामान्य जन की प्रश्नाकुलता, हताशा, उदासी, निराशा, युद्ध के प्रति संशयग्रस्त मन और युद्ध की विभीषिका से भयभीत, द्वन्द्वग्रस्त स्थिति तथा संवेदनशीलता को दिखाया है। अपनी इसी विशेषता के कारण आधुनिक युगीन ये दो काव्य एक ओर जहाँ सामान्य जन के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफल हुए हैं ,वही दूसरी ओर युगानुरूप परिस्थितियों में प्रासंगिक भी बन पड़े हैं।

बीज शब्द : राम, मिथक, लघु मानव,प्रासंगिकता।

प्रस्तावना :

रामकथा का इतिहास बहुत पुराना है। सबसे पहले वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना की थी और उसके बाद रामकथा की जैसे बाढ़ सी आ गयी। हिंदी साहित्य के मध्यकाल में रामकेंद्रिक अनेक

रचनाएँ लिखी गयी थीं। आधुनिक काल तक आते-आते रामकाव्य लिखने की परंपरा लगभग समाप्त हो गई थी; पर राम की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई। राम एक सनातन पुरुष हैं, जो हर युग में महत्त्वपूर्ण हैं। आधुनिक काल में पौराणिक पात्रों को लेकर मिथकीय रचना लिखने की एक परंपरा चली। मैथिलीचरण गुप्त कृत 'साकेत', अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'वैदही वनवास', निरालाकृत 'राम की शक्ति-पूजा' और नरेश मेहताकृत 'संशय की एक रात' इसी परंपरा की रचनाएँ हैं। 'साकेत' और 'वैदही वनवास' में राम का परम्परागत रूप में ही चित्रण हुआ है, लेकिन 'राम की शक्ति-पूजा' और 'संशय की एक रात' में राम मर्यादापुरुषोत्तम प्रबल प्रतापी भगवान न होकर एक सामान्य मानव हैं, जिसके माध्यम से दोनों कवियों ने राम को आधुनिक संदर्भ से जोड़ा है। आधुनिक काव्य में राम युगीन समस्याओं को अभिव्यक्ति देने के माध्यम मात्र हैं।

अध्ययन की पद्धति :

राम विषयक अध्ययन हमेशा से ही महत्त्वपूर्ण रहा है। आधुनिक हिंदी काव्य में राम किस रूप में चित्रित हुए हैं, इसका अध्ययन करना अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है- आधुनिक काव्य में राम के स्वरूप का उद्घाटन करना। 'राम की शक्ति पूजा' (1936) और 'संशय की एक रात' (1962) काव्य में किस रूप में उनका चित्रण हुआ है, उन सभी का अध्ययन यहाँ किया गया है। प्रस्तुत पत्र के अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है।

विश्लेषण :

महर्षि वाल्मीकिकृत 'रामायण' में राजा राम क्षत्रिय धर्म और औदात्यपूर्ण संस्कृति के वाहक हैं, तो तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। पर इस क्षेत्र में आधुनिक युगीन कवि निराला की कविता 'राम की शक्ति-पूजा' और नरेश मेहता का खंडकाव्य 'संशय की एक रात' के राम भिन्न हैं। इन दोनों काव्य में दोनों कवियों ने राम नाम को तो उद्धृत किया है, पर नवीन रूप में; क्योंकि ये राम अवतारी राम नहीं, बल्कि अपने समय के साधारण मानव हैं, जो अपने समय की परिस्तिथियों से अवसाद ग्रस्त हैं। युगीन राजनैतिक, सामाजिक और मानसिक स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए निराला और नरेश मेहता ने पुराण एवं इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं एवं मार्मिक प्रसंगों को आधार बनाकर 'राम की शक्ति-पूजा' और 'संशय की एक रात' में आदर्श पुरुष, शील, शक्ति, सौंदर्य आदि गुणों से युक्त श्रीराम के मिथक में सामान्य जन की प्रश्नाकुलता, हताशा, उदासी, निराशा, युद्ध के प्रति संशयग्रस्त मन और युद्ध की विभीषिका से

भयभीत, द्वन्द्वग्रस्त स्थिति तथा संवेदनशीलता को दिखाया है। दोनों रचनाओं में राम के चरित्र के नये रूप सामने आते हैं।

संशयग्रस्तता :

काव्य तथा आख्यानों में राम को चाहे मानव रूप में दिखाया गया हो या फिर ईश्वर रूप में, दोनों ही स्थितियों में कभी भी राम को शंकित, भयभीत या उद्विग्न नहीं दिखाया गया है। राम हमेशा से ही सबके लिए प्रोत्साहन तथा प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। लेकिन आधुनिक काव्य में राम का स्वरूप परंपरा से भिन्न है। यहाँ सामान्य मानव की भाँति राम युद्ध के परिणाम के प्रति संशयग्रस्त तथा चिंतित हैं। उनके मन में आत्मविश्वास से अधिक संशय है, जो युगीन परिस्थितियों को उभारने में सक्षम हुए हैं। 'संशय की एक रात' में राम स्वयं युद्ध के परिणाम को लेकर संशयग्रस्त हैं। अपने संशय को व्यक्त करते हुए राम कहते हैं –

यदि मैं मात्र कर्म हूँ
तो यह कर्म का संशय है।
यदि में मात्र क्षण हूँ
तो यह क्षण का संशय है
यदि मैं मात्र घटना हूँ
तो यह घटना का संशय है
पर यह संशय है
संशय है
संशय है। (मेहता 2012:52-53)

'राम की शक्ति-पूजा' निराला के साहित्य की एक उत्कृष्ट उपलब्धि है। इसमें निराला ने रामकथा के माध्यम से धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है। राम धर्म का प्रतीक है और रावण अधर्म का। रामकथाओं में हमेशा से ही अधर्म पर धर्म की जीत दिखायी गयी है, लेकिन प्रस्तुत कविता में अधर्मी रावण का चित्रण एक विराट शक्ति के रूप में किया गया है, जिसके समक्ष एकबार के लिए तो राम भी कमजोर पड़ गये थे। यह कविता राम के मानवीय स्वरूप के संशय का चित्रिण करता है। राम जो रावण जैसे पराक्रमी योद्धा से युद्ध करने के लिए कभी भी नहीं डरे, वही राम आज भयभीत है, चिंतित हैं, शंकित हैं -

स्थिर राघवेंद्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय;
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य-श्रांत,-
एक भी, अयुत-लक्ष्य में रहा जो दुराक्रांत,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,

असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार । (निराला 2015:43)

राम का संशय व्यक्ति का नहीं, बल्कि समष्टि का है। नरेश मेहता राम को पौराणिक मिथकों के स्थान पर समकालीन सन्दर्भों से जोड़ते हैं।

हताशा से पीड़ित :

राम संबंधी आख्यानों में राम सदा प्रबल-प्रतापी वीर योद्धा के रूप में चित्रित हुए हैं; पर आधुनिक काव्य में राम को हताश, निराश, भयभीत तथा चिंतित रूप में चित्रित किया है। कहीं-कहीं तो राम रोते हुए भी नजर आये हैं। आधुनिक काव्य में राम के इस स्वरूप के माध्यम से सामान्य जन की पीड़ा, उदासीनता, हताशा, निराशा आदि की ही अभिव्यक्ति हुई है। 'राम की शक्तिपूजा' कविता में राम सीता के साथ व्यतीत किये गये पलों को याद कर मुस्कुराते हैं, लेकिन दूसरे ही क्षण कठोर वास्तविकता से तकड़ाकर उनकी वे स्मृतियाँ चूर-चूर हो जाती है। इस महायुद्ध में महाशक्ति स्वयं रावण की रक्षा कर रही थी। महाशक्ति के विराट रूप में राम के समस्त दिव्यास्त्र विलीन हो रहे थे। अपनी हार तथा सीता का उद्धार न कर पाने की आशंका से व्याकुल राम के नेत्रों से मोती के समान आँसू की दो बून्दें गिर पड़ती हैं-

ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ बुझ कर हुए क्षीण,
पा महामिलन उस तन में क्षण में हुए लीन;
लख शंकाकुल हो गये अतुल बल शेष शयन,
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन;
फिर सुना हँस रहा अट्टाहास रावण खलखल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल। (निराला 2015:44)

राम जैसे परम शक्तिशाली पुरुष को असहाय दिखाकर आधुनिक कवियों ने समकालीन समाज में जनसाधारण की विडम्बना को दर्शाया है, जो युगीन परिस्थितियों से पीड़ित होकर हार चुके हैं । 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला ने राम के निराशा भरे स्वरूप का मार्मिक चित्रण किया है-

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध !
जानकी ! हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका । (निराला2015:52)

द्वन्द्वग्रस्तता :

राम काव्य की परंपरा में राम को हमेशा आत्मविश्वास से युक्त दर्शाया गया है। वे शील, धैर्य, सूझ-बुझ के प्रतीक रहे हैं। 'रामायण', 'रामचरितमानस' तथा अन्य राम आख्यानों में कभी भी उन्हें द्वन्द्वग्रस्त नहीं दिखाया गया। सीता का उद्धार तथा रावण से युद्ध के संबंध में उन्होंने जो निर्णय लिया उसमें वे अटल रहें; पर आधुनिक राम में यह निश्चयता नहीं देखने को मिलती। सीता के उद्धार को

लेकर किये गये युद्ध के संबंध में आधुनिक राम के मन में द्वंद्व उत्पन्न होता है। युद्ध और शांति की समस्या को लेकर वे द्वंद्व में उलझ चुके हैं। वे कहते हैं -

लक्ष्मण !
राम की इस विवशता को
सोच सकते हो ?
अन्य प्रायश्चित करें मेरे लिए,
दुःख भोगें,
वनों में भटके अकारण ही
बिना वनवास की आज्ञा मिले।
पिता की मृत्यु
विधवा जननियाँ
कौन है इसका निमित्त?

'संशय की एक रात' में राम का आत्मसंशय बाह्य संघर्ष यानी युद्ध का कारण है। एक ओर वे सीता के उद्धार के लिए युद्ध करना चाहते हैं; पर दूसरी ओर वे सीता के उद्धार को नितांत व्यक्तिगत समस्या समझते हैं। वे सीता के उद्धार के लिए किये गये युद्ध को जनविनाश का कारण नहीं बनाना चाहते। अपने व्यक्तिगत समस्या के समाधान हेतु वे सम्पूर्ण मानव जाति का नाश नहीं कर सकते। राम के द्वन्द्वग्रस्त स्थिति का प्रमाण सर्वाधिक तब मिलता है, जब वे अपने पिता की छाया से वार्तालाप करते हैं। राम पिता की छाया के सामने अपना द्वंद्व व्यक्त करते हैं और युद्ध की सार्थकता तथा शांति की प्रतिष्ठा के संबंध में क्या उचित है और क्या अनुचित यह निश्चित नहीं कर पाते। युद्ध और शान्ति में से वे किसका चुनाव करें इसका समाधान वे खोजने लगते हैं। पिता की छाया राम को युद्ध की सार्थकता समझाती है; पर राम का मन द्वंद्व से निकल नहीं पाता। राम का द्वंद्व उनके संशयग्रस्त मन के कारण बढ़ता ही जाता है। यहाँ पर ही राम का आत्मसंशय आत्मसंघर्ष बन जाता है। वे हनुमान से कहते हैं-

हनुमत वीर !
युद्ध की अनिवार्यता को जानता हूँ
अपने से अधिक
इन पृथुज्जन को मानता भी हूँ
किन्तु
इस युद्ध के उपरांत
होगी शांति
इसका तो नहीं विश्वास।
बंधु !
यह युद्ध
संभव है अनागत युद्ध का कारण बने। (मेहता2012:64)

अपने अन्तर्द्वन्द्व के कारण राम संशय से ग्रसित हैं तथा युद्ध में होनेवाले विनाश का उत्तरदायी वे स्वयं को समझते हैं ।

युद्ध विरोधी :

युद्ध हर युग की प्रमुख समस्या है। युद्ध से किसी का भला नहीं हो सकता। 'राम की शक्तिपूजा' और 'संशय की एक रात' जैसे आधुनिक काव्यों में कवियों ने राम के माध्यम से युद्ध एवं शांति जैसी महत्त्वपूर्ण समस्या को उठाया है । यहाँ राम युद्ध-विरोधी के रूप में उभरकर आये हैं। वे युद्ध की जय-पराजय से भयभीत नहीं हैं, उन्हें इस बात की चिंता है कि युद्ध से क्या शांति स्थापित हो पायेगी। साथ ही युद्ध की विभीषिका से राम का संवेदनशील मन चित्कार कर उठता है। राम युद्ध से डरते नहीं, बल्कि सच तो यह है कि उन्हें युद्ध प्रिय नहीं। मानवता की हत्या कर युद्ध से शांति स्थापना की कामना वे नहीं करते। युद्ध का विरोध करते हुए वे कहते हैं -

लक्ष्मण!
मैं नहीं हूँ कापुरूष
युद्ध मेरी नहीं है कुंठा
पर युद्धप्रिय भी नहीं ।
बंधु ! (मेहता 2012:28)

राम युद्ध की विभीषिका को जानते हैं और इसीलिए वे समस्त संसार को युद्ध से बचाना चाहते हैं -

मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बंधु !
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बंधु !
क्या यह संभव है ?
क्या यह नहीं है ? (मेहता 2012:27)

डॉ. कमला प्रसाद पाण्डेय ने 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है-

> अन्तत: राम सामूहिक के पर्याय होते हैं तथा अपने विवेक से प्रश्न न उठाने का परामर्श देते हैं। यहाँ राम स्वातंत्र्य के अभिलाषी हैं, पर उस प्रकार का समाज ही नहीं है। यहीं कवि का मनोवैज्ञानिक स है और आधुनिकता भी। राम लोकतंत्री विचारणा के जन हैं। वे लोकहित के लिए अपनी व्यक्तिगत समस्या, किन्तु सबसे प्रिय पत्नी को भी छोड़ने को तैयार हैं। (गोदरे 2007:99)

नरेश मेहता ने युद्ध की समस्या को नये आयामों तथा सन्दर्भों से जोड़ा है। उन्होंने युद्ध जैसी सार्वभौमिक समस्या को राम के साथ सम्पृक्त करके चारों ओर के संशय, अविश्वास, कुण्ठा आदि के दूरीकरण का प्रायास किया है। इसीलिए कवि को राम का अलौकिक रूप नहीं दिखा। उनके लिए तो राम आधुनिक युगीन समस्याओं से पीड़ित संशयी आम मनुष्य हैं। राम युद्ध नहीं चाहते पर कई बार मनुष्य को न चाहकर भी समष्टि के लिए कार्य करने पड़ते हैं-

मैं निर्णय हूँ सबका, अपना नहीं
क्योंकि मैं अब निर्णय हूँ, व्यक्ति नहीं ।(मेहता 2012:28)

मानव-कल्याण की कामना :

आधुनिक काव्य में राम के मानव-कल्याणकामी स्वरूप का भी उद्घाटन हुआ है । युद्ध से होनेवाले नाश तथा उसकी विभीषिका के बारे में राम जानते हैं । वे ज्ञात हैं कि युद्ध से शांति तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना नहीं हो सकती । ऐसी विजय से प्राप्त सीता भी उन्हें स्वीकार्य नहीं । 'संशय की एक रात' में राम का मानव-कल्याणकामी स्वरूप दर्शनीय बन पड़ा है-

एसा युद्ध
ऐसी विजय
ऐसी प्राप्ति-
सब मिथ्यात्व है
नरसंहार के व्यामोह के प्रति
वितृष्णा से भर उठा हूँ । (मेहता 2012:33)

राम स्वयं को कुल के विनाश का कारण मानते हैं। अब वे जन के विनाश का कारण नहीं बनना चाहते-

धनुष, वाण, खड्ग और शिरस्त्राण ।
मुझे एसी जय नहीं चाहिए,
बाणबिद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए,
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए ।
सीता भी नहीं ।
हाय
आज तक मैं निमित्त ही रहा
कुल के विनाश का
लेकिन
अब नहीं बनूँगा कारण
जन के विनाश का । (मेहता 2012:36)

प्रश्नाकुलता :

राम एक आदर्श पुरुष हैं। वे स्वयं समस्त प्रश्नों के उत्तर हैं। पर आधुनिक काव्य में राम सामान्य मानव की तरह प्रश्नाकुल दिखाये गये हैं, जिनके मन में युद्ध के परिणाम के संबंध में, अनिश्चित भविष्य के संबंध में, मानव-कल्याण के संबंध में तथा समकालीन अनेक समस्याओं के संबंध में अनेक प्रश्न उमड़ रहे हैं। राम का मन उन प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए व्याकुल है। इन्हीं प्रश्नों के कारण वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पा रहे हैं। प्रश्नों के जाल में वे उलझ चुके हैं। उनके मन में दो प्रमुख प्रश्न उभरते हैं, पहला क्या युद्ध से शांति संभव है? युद्ध की सार्थकता के संबंध में प्रश्नाकुल होकर वे कहते हैं -

मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं,
खड्ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ।
क्या यह संभव है ?
क्या यह नहीं है ? (मेहता 2012:35)

राम के मन में उठनेवाला दूसरा प्रश्न यह है कि सीता के उद्धार के लिए किया गया युद्ध सार्वत्रिक है या व्यक्तिगत? राम व्यक्तिगत समस्याओं के चलते युद्ध के ऐतिहासिक कारणो को जन्म देना नहीं चाहते। इसीलिए वे लक्ष्मण से प्रश्न करते हैं -

व्यक्ति का वनवास
परिजन और पुरजन के लिए
अभिशाप क्यों बन जाए ?
व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें ? (मेहता 2012:29)

मौलिक संकल्पना के अधिकारी :

एक ओर जहाँ निराला राम को हताश होते हुए चित्रित करते हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने शक्ति की मौलिक कल्पना कर राम को विषम परिस्थितियों से लड़कर आगे बढ़ते हुए भी दिखाया है। आधुनिक काव्य में जिस लघु मानव की प्रतिष्ठा की बात कही गयी है, कहीं न कहीं आधुनिक राम उसी लघु मानव का प्रतिनिधित्व करते हैं। राम बार-बार रावण से युद्ध में हारते हैं, ऐसी स्थिति में उनका स्वरूप अवतारी राम का न होकर लघु मानव का हो जाता है। जाम्बवान ने अवसादग्रस्त राम को इस विषम परिस्थिति में शक्ति की मौलिक कल्पना करने का जो उपदेश दिया, उसे राम ने ग्रहण किया और अपनी संकल्पना से युद्ध को आगे बढ़ाया। राम ने जब शक्ति की पूजा करने का निश्चय किया, उसी समय राम की विजय निश्चित होती है। राम के लिए रावण से युद्ध जितना

लगभग असंभव था। राम भी पहले इस बात से शंकित थे; पर बाद में राम ने प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए संघर्ष किया। इसीलिए अंत में जो महाशक्ति रावण के पक्ष में थीं, वहीं महाशक्ति राम को विजय होने का वर देकर उनमें समाहित हो गयीं। अपने निश्चय को पूरा करने के लिए राम इतने दृढ़ हो गये कि पूजा के लिए एक कमल कम होने पर वे अपनी एक आँख देवी के चरणों में चढ़ाने के लिए उद्यत होते हैं-

'यह है उपाय' कह उठे राम ज्यों मंद्रित घन-
कहती थीं माता मुझे सदा राजीव- नयन !
दो नील-कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन ! (निराला 2015:52)

राम के इस स्वरूप से निराला ने युगीन निराश, हताश जनता के मन में आशा की किरण जगायी है। राम के माध्यम से कवि निराला ने आधुनिक युगीन मानव के आत्मसंघर्ष को दिखाया है, जो अपने युगीन समस्याओं से लड़कर विजय प्राप्त कर सकता है।

मानसिक सबलता :

मन मनुष्य की चालिकाशक्ति होता है। हार-जीत मनुष्य के मन के ही भाव हैं। इसीलिए तो कहा जाता है मन के जीते जीत है, मन के हारे हार। मनुष्य अगर कुछ करने का तय कर ले, तो उसे उस कार्य में सफलता अवश्य मिलती है। ठीक उसी प्रकार अगर किसी कार्य को करने से पहले ही कोई हार मान ले तो उसकी हार निश्चित हो जाता है। सामान्य मनुष्य ही नहीं विष्णु के अवतार राम का मन भी एकबार निराशा से ग्रस्त हो गया था; पर फिर भी उनके अन्तर्मन ने हार नहीं मानी। उनका अन्तर्मन बड़ी से बड़ी विपत्ति से लड़कर भी अडिग रहा-

वह एक और मन रहा राम का जो न थका;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दूर्ग पहुँचा विद्युत- गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमण। (निराला 2015:52)

डॉ. नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में लिखा है-

> भौतिक विपत्तियों से कुछ समय के लिए क्लान्त हो जाने पर भी वह साहस नहीं छोड़ता और अंतत अपने आत्मबल के द्वारा सफलकाम हो जाता है। यही कारण है कि ब्राह्म विघ्न-बाधाओं से राम का चेतन मन जहाँ कुछ समय के लिए व्याकुल हो गया था, वहाँ उनके अन्तर्मन ने पराजय स्वीकार नहीं की और शीघ्र ही समाधान प्राप्त कर लिया। (नगेन्द्र 2012:44)

राम की शक्तिपूजा कविता का प्रेरक तत्व ही है मानव मन की अपराजेयता। इसमें कवि ने राम के चरित्र के जरिये मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की विषम परिस्थितियों के विरुद्ध लड़कर जीतने के जज्बे को दिखाया है। साथ ही प्रस्तुत कविता में सामाजिक स्तर पर विदेशी शासन के खिलाफ़ राष्ट्रशक्ति की जय-पराजय की भी व्यंजना है। प्रस्तुत कविता में राम के माध्यम से आधुनिक युगीन नायक के जीवन का प्रतिफलन दिखाया गया है, जो अनेक युगीन विड़म्बनाओं से झकड़ा हुआ है।

निष्कर्ष :

राम एक सनातन पुरुष हैं, जिनका चरित्र हर युग में अनुकरणीय रहा है। साधारणत: राम संबंधी रचनाओं में राम को जिस रूप में देखा गया है, आधुनिक काव्य में राम के उस स्वरूप में भिन्नता है। आधुनिक हिंदी काव्य में राम अवतारवादी राम न होकर सामान्य मानव हैं, जो युगीन समस्याओं से पीड़ित हैं। रामाख्यानों में राम हमेशा परमशक्तिशाली, शील, सौन्दर्य के प्रतीक आदर्श पुरुष के रूप में परिलक्षित होते हैं; पर आधुनिक हिंदी काव्य में राम के संशयग्रस्त, हताश, द्वन्द्वग्रस्त, प्रश्नाकुल, युद्ध विरोधी, मानव-कल्याणकामी मनोबली और मौलिक संकल्पना के अधिकारी स्वरूपों का चित्रण किया गया है। 'राम की शक्तिपूजा' के राम और 'संशय की एक रात' के राम दोनों आधुनिक युगीन राम होते हुए भी भिन्न हैं। निराला ने जहाँ राम को रावण के विजय से शंकित दिखाया है, वहीं दूसरी ओर नरेश मेहता ने राम को व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर जन-विनाश का विरोध करते हुए दिखाया है। आधुनिक युगीन काव्य में राम लघु मानव का प्रतिनिधित्व करते हुए चित्रित हुए हैं। इस स्वरूप में भी राम सामान्य जन का प्रतिनिधित्व करते हुए परिलक्षित होते हैं।

ग्रंथ-सूची :

नगेंद्र. राम की शक्तिपूजा.नयी दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस,2012.

नगेंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. नयी दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस,2012

निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी.अपरा. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2015.

मेहता, श्रीनरेश.संशय की एक रात. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2012.

गोदरे विनोद.आधुनिक प्रबन्ध काव्य संवेदना के धरातल.द्वितीय.वाणी प्रकाशन: नयी दिल्ली,2007

सिन्हा,विद्या,संपा. नई कविता:निराला,अज्ञेय और मुक्तिबोध.द्वितीय.नयी दिल्ली:वाणी प्रकाशन, 2007

संपर्क-सूत्र:
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
नगाँव महाविद्यालय(अटोनोमॉस)
ई-मेइल: pujabaruah7274@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 74-82

जनजातीय कला एवं साहित्य

✍ डॉ. अमिता

शोध-सार :

जनजातीय कला और संस्कृति आत्माभिव्यक्ति का परिचायक होती है। उनकी इस अभिव्यक्ति का सामाजिक महत्व होता है। उनके विचार स्व निर्मित होते हैं, उन पर किसी प्रकार का राजनीतिक प्रभाव नहीं होता। आदिम जनजातीय कलाएँ सहज एवं स्वाभाविक होती हैं। देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में विविध प्रकार की जनजातीय कलाएँ विद्यमान हैं जिन्हें जनजाति साहित्य के अंतर्गत समाहित किया गया है। प्रस्तुत लेख में जनजातीय साहित्य के विविध पहलुओं को रेखांकित करते हुए साहित्य में उनकी महत्ता को स्पष्ट किया गया है।

बीज शब्द: *जनजातीय दर्शन, प्रकृति निसर्ग, बिंब, प्रतीक*

प्रस्तावना:

जनजातियों में 'कला कला के लिए नहीं होती', उनके लिए कला का सामाजिक महत्व होता है। उनके लिए कला का लक्ष्य मात्र सौंदर्य अथवा अलंकरण नहीं होता । उनके लिए कला का अर्थ जीवन की तपिश से गुजरते हुए अपने आप को अभिव्यक्त करना है। एक लेखक ने पश्चिमी अफ्रीका की कलाओं के विषय में अपनी पुस्तक में लिखा है

> आदिवासियों की कला सर्वाधिक शुद्ध और आडंबर रहित होती है , इसका कुछ कारण तो यह है कि यह धार्मिक भावनाओं और आध्यात्मिक अनुभूति से प्रेरित होती है और कुछ इसलिए कि यह कला के रूप में पूर्ण रूप से अनात्मव्यंजक है। इस कला में इस प्रकार के कौशल की कोई गुंजाइश नहीं है, जिसे कोई भी अयोग्य व्यक्ति सीख ले और ना ही इसमें ऐसी तकनीकी कलाबाजियों का स्थान है, जिन्हें प्रेरणाजनित कृति के रूप में प्रस्तुत किया जा सके।(वेरियर 4-5)

जनजातीय कलाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि यह औपनिवेशिक विचारों और प्रभावों से मुक्त होती हैं। कथित आधुनिकता के नाम पर ये औपनिवेशिकता का अनुगामी नहीं हैं, बल्कि इनकी मौलिकता ही देशज आधुनिक की प्रस्तावक है। आदिम जनजातीय कलाएँ सहज, सरल और बिलकुल निर्मल जीवन को प्रतिबिंबित करती हैं। जनजातीय कलाएँ समुदायगत होकर भी क्षेत्रीय अथवा आंचलिक स्वरूप रखती हैं। जनजातियों का सर्वाधिक सहज और तत्काल स्फुरित कला का रूप भित्तिचित्रण परंपरा का है, जिसमें सभी प्रकार के आकार और अभिप्राय चित्रित किये जाते हैं। जनजातीय चित्रों में सीमित और स्थानीय रंगों का प्रयोग होता है, जिनमें गेरु, खड़िया मिट्टी, पीली मिट्टी, दाल-चावल या हल्दी का चूर्ण, चुना आदि होते हैं । भित्तिचित्रों के विषय में मानवाकृतियां,पनिहारिन, पशु-पक्षी, प्रकृति आखेटक ,दैनिक जीवन, बैलगाड़ी, खेत -खलियान, युगल और कभी-कभी कार ,विमान आदि भी होते हैं।

अंगालेखन (गोदना) आदिवासी चित्रांकन की एक प्रमुख पहचान है ,जो उनके अंगों पर आभूषण के समान होते हैं। अंगालेखन स्त्री और पुरुष दोनों में लोकप्रिय है, किंतु स्त्रियाँ विशेष रूचि लेती हैं। यह आकार किसी मेले या घर में बनाये जाते हैं। इन आकारों का प्रकार प्रतीकात्मक ज्यामितीय और सुस्पष्ट होता है।

भारत के सभी क्षेत्रों की जनजाति मृण शिल्प (टेराकोटा) के लिए प्रसिद्ध है। अनुष्ठान और गृहोपयोगी वस्तुओं में मृणशिल्प का विशेष महत्व होता है। इन मृणशिल्प का विषय घोड़ा- हाथी, ऊँट, मयूर ,मानव, विविध प्रकार के पक्षी व प्रकृति के अतिरिक्त देवी देवता भी होते हैं जो घर के सभी लोग बनाते हैं। अनेक आदिवासी लोगों में अनाज संग्रह के विशाल मिट्टी के पात्र विविध प्रकार के अभिप्राय और अभिकल्पों से अलंकृत होते हैं।

जनजातीय काष्ठकला अपनी विशेषता एवं अनूठेपन के कारण प्रसिद्ध है। किन्नौर की हस्तकलाओं में काष्ठकला का एक विशेष योगदान माना जाता है। काष्ठ का भवन, मूर्तियाँ, दरवाजे, वाद्ययंत्र आदि में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। किन्नौर की काष्ठकला में कश्मीर और तिब्बत का

प्रभाव दिखाई पड़ता है। किन्नौर के गोन्फ (बौद्ध मठ) में अनेक प्रकार की मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। काष्ठकला के लिए देवदार और अखरोट की लकड़ी को सर्वोतम माना जाता है। इन लकड़ियों पर देवी-देवता, बोधिसत्वों के चित्र, गंधर्व, ड्रेगन, और नृत्य करती अप्सराएँ, एवं शंख आदि की आकृतियाँ उभरी होती हैं। यहाँ पारंपरिक भवनों का निर्माण लकड़ी ,मिट्टी और पत्थरों से होता है।लिपि के अविष्कार के पूर्व आदिवासी चित्रों के माध्यम से संवाद किया करते थे। शादी, पूजा, विधि का दीवारों पर चित्र बनाकर आदिवासी अपनी संस्कृति का दर्शन करवाते थे। महाराष्ट्र के खानदेश में भील आदिवासी समुदाय में विवाह के कार्यक्रम में घर की दीवारों पर हल्दी, कुमकुम से हल-बक्खर, घर, बैल, मुर्गियाँ, बकरियाँ, बत्तख, फूल, पौधे, वृक्ष, खेती, ढोल, बिरी, बाँसुरी, और नृत्य करने वाले दल आदि चित्रों से आदिवासी परम्पराओं को दर्शाने वाली संस्कृति संबंधी कला का प्रदर्शन किया जाता है। विवाह में चौक पूरने का विशेष महत्व होता है। चौक के बिना शादी-विवाह सम्पन्न ही नहीं होता है। चौक पूजा में देवी-देवता, घर-खेती, हल-बक्खर और शिकार, कुल मिलाकर विवाह वाले घर की दीवारों पर आदिवासी जीवन मूल्यों का सम्पूर्ण दर्शन विभिन्न चित्रों के माध्यम से झलकता है। इस चित्रकला को वारली पेंटिंग के नाम से जाना जाता है। आज वारली पेंटिंग पूरे विश्व में प्रसिद्ध है।कृषि से जुड़ी हस्तकला का आदिवासी जीवन में एक विशेष महत्व होता है। बड़ो लोगों का जीवन मूलतः कृषि पर ही आधारित होता है। कृषि से जुड़ी हस्तकलाएँ विशेषकर बाँस और लकड़ी परखच्चों से बनी होती हैं। इनमें से 'नाङल' (हल) , 'जुंगाल'/'जंगल', 'लावथि', 'मै', 'बेदा', 'खाबनि'/'हासिनी', 'हुखेन', 'हुलाबारि', 'सिलि', 'मुखा', 'रयना', और 'खफ्रि' आदि उल्लेखनीय हैं।

'नाङल' लकड़ी का बना होता है। 'जुंगाल' या 'जंगल' लकड़ी से भी बनाये जाते और बाँस से भी बनते हैं। जब लकड़ी की कमी होती है तो इनको बाँस से भी बनाया जाता है। 'नाङल' अधिकतर प्रौढ़ कटहल के पेड़ से बनाया जाता है। कृषि-प्रधान एक आदिवासी परिवार के लिए 'नाङल' किसी जिंदगी के समान मूल्यवान होता है। 'नाङल' की मुट्ठियों को हाथ में पकड़कर ही किसान अपने सपने

बुनते हैं।महाराष्ट्र के खानदेश के गांवों में भील आदिवासी बहुत ही धूम-धाम से दीवाली मनाते हैं। इस समय गाँव में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता। इसमें आदिवासी अपनी-अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। गाँव की एक विशाल चौपाल या खुली जगह में नाटक खेले जाते थे। इन अवसरों पर शहद निकालना, शिकार पर जाना, शराब की लत आदि विषयों से संबंधित नाट्य प्रस्तुत किये जाते हैं, जिससे आदिवासियों को बहुत सारी जानकारियाँ प्राप्त होती थीं और साथ में मनोरंजन हो जाता था।

भील जनजाति के त्योहार एवं काला के संदर्भ में सोनवणे लिखते हैं-

> भील जनजातीय होली का त्योहार, सरकारी होली के पूर्व आरंभ होता है। इन पाँच दिनों के भीतर हर गाँव की होली का दिन तय होता है। ढोल, तूर, मांदला जैसे साजबाज बजाकर होली का त्योहार मनाया जाता है। लोग शाम से ही होली के इर्द गिर्द इकट्ठे होकर रातभर नाचते हैं, भोर में होली जलाकर विधिवत पूजा कर लोग अपने अपनेधरों को लौटते हैं। इस समय गेर, बुधे बाबा कलात्मक वेश धारण कर पाँच दिनों तक गाँव-गाँव जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। बांस की तिलियों से बने सुन्दर मुकुट पर रंग-बिरंगे कागज चिपकाकर उसे सिर में पहने, कमर में घुँघरू कद्दू बांधकर पाँच दिनों तक होली का नृत्य किया जाता है।(सोनवणे 46)

आदिवासी समाज मूलतः प्रकृतिजीवी और उत्सवधर्मी समाज है, उसके यहाँ गायन-वादन और नृत्य का अपना अमिट स्थान है। विभिन्न लोकपर्वों, फसलों और ऋतुओं पर असंख्य गीत-लोकगीत गाये जाने का चलन है। वर्तमान तकनीक, वैज्ञानिक अविष्कार और बाजार की पहुँच भी अब आदिवासी अचंल तक हुई है। वर्तमान जनजातीय गीतों में इसकी भी धमक सुनी जा सकती है।

जनजातीय लोक में साहित्य सहित विविध कला-माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलत: मौखिक रही।

जनजातीय साहित्य के संदर्भ में प्रसिद्ध आदिवासी एक्टीविस्ट, कथाकार व कवयित्री रमणिका गुप्ता कहती हैं-

> मैं जनजातीय साहित्य उसी को मानती हूँ, जो जनजातियों ने लिखा और भोगा है। उसे जनजातीय समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन-शैली पर आधारित होना होगा। अर्थात् जनजातियों द्वारा जनजातियों के लिए जनजातियों पर लिखा गया साहित्य जनजातीय साहित्य कहलाता है।(उषाकीर्ति, पांडेय, प्रसाद, सं 2012:30)

आदिवासी लेखिका वंदना टेटे की स्थापना यह है-

> ग़ैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासियों पर रिसर्च करके लिखी जा रही रचनाएँ शोध साहित्य है, आदिवासी साहित्य नहीं। आदिवासियत को नहीं समझने वाले हिंदी-अंग्रेज़ी के लेखक आदिवासी साहित्य लिख भी नहीं सकते। सुनी-सुनाई बातों से आदिवासी जीवन का सच प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। (आदिवासी साहित्य पर जे.एन.यू. में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में वंदना टेटे द्वारा दिये गये व्याख्यान से)

आज़ादी के पश्चात् प्रकाश में आये अस्मितावादी विमर्शों में दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श के बाद सबसे नया विमर्श जनजातीय विमर्श है। अब जनजातीय चेतना से युक्त जनजातीय साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। आज जनजातीय साहित्य हिंदी के अलावा लगभग 100 जनजातीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है। दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के पश्चात् आज जनजातीय साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केन्द्रीय परिधि में लाया जा रहा है, जनजातीय समाज व साहित्य पर निरन्तर पर चर्चा की जा रही है।

जनजातीय साहित्य की अवधारणा को लेकर जनजाति एवं ग़ैर- जनजाति दृष्टि में तीन तरह के मत हैं। पहला मत यह है कि जनजाति विषय पर लिखा गया साहित्य जनजातीय साहित्य है। यह अवधारणा ग़ैर- जनजातीय लेखकों की है। संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, रमणिका गुप्ता, बजरंग तिवारी आदि इसके समर्थक रहे हैं। दूसरे मत के अनुसार जनजातियों द्वारा लिखा गया

साहित्य जनजाति साहित्य है। इस अवधारणा से संबंधित साहित्यकार/लेखक जन्मना एवं स्वानुभूति के आधार पर जनजातियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही जनजातीय साहित्य मानते हैं। तीसरा मत यह स्वीकार करता है कि जनजातीय दर्शन के तत्त्वों वाला साहित्य ही जनजातीय साहित्य है।

इनमें से तीसरी अवधारणा को जनजातीय साहित्य की परिभाषा के सर्वाधिक नज़दीक माना जा सकता है। जनजातीय दर्शन का स्वरूप क्या है और आदिवासी साहित्य में इसकी पहचान कैसे करेंगे, इसके जवाब में कह सकते हैं कि जनजातियों के जीवन व समाज से संबंधित प्रत्येक विशेषता, परम्पराएँ जैसे-प्रकृति के सान्निध्य में रहना, मानवेतर प्राणी जगत के साथ सह-अस्तित्व, अपने आप में खुलापन, सामूहिकता, सहभागिता, जनजातीय संस्कृति, जीवन-शैली, उनकी अपनी समस्याएँ, स्वतंत्रता, जल, जंगल, ज़मीन, अपनी मातृभाषा, अपना इतिहास, लोककथाएँ, मुहावरे, मिथक, विकास की अपनी परिभाषा इत्यादि सब जनजातीय दर्शन के अंतर्गत निहित हैं ।समतापूर्ण विश्वास, श्रम, संगीत व जीवनराग से उपजा दर्शन ही जनजातीय दर्शन है। जनजातीय दर्शन में श्रेष्ठ और निकृष्ट का कोई विभाजन नहीं है, सुंदर-असुंदर जैसी कोई मान्यता नहीं है। जनजातीय दर्शन में प्रत्येक चीज़ अभिराम है। वह सहजीविता, समानता, प्रकृति प्रेम व श्रेष्ठ जीवन मूल्यों पर आधारित है। जनजातीय संस्कृति जनजातीय जीवन और समाज का संस्कार है। इसमें प्रकृतिगत समता, उन्मुक्तता, निश्छलता, सहजता, सामूहिकता एवं शोषण मुक्तता की विशाल हृदयता है। इस संस्कृति में कोई आडम्बर एवं भेदभाव नहीं है। जनजातीय साहित्य की मूल प्रेरणा स्त्रोत् 'प्रकृति' निसर्ग है। जनजातीय जीवन दर्शन में सत्ता रूपी साहित्य के लिए कोई स्थान नहीं है। जनजातीय जीवन दृष्टि में मनुष्य का जितना महत्त्व है, उतना ही पशु-पक्षी, नदी-पहाड़, वनस्पति, कीट-पंतग, नाला,वृक्ष प्रकृति की प्रत्येक जड़-चेतन रचना का है। यहां मनुष्य केंद्र में नहीं है, वह अन्य सभी के साथ सह -अस्तित्व के रूप में है। जनजातीय साहित्य की अपनी भावभूमि है, सौंदर्य बोध है, विश्वदृष्टि है। सामूहिक मूल्यों एवं सह अस्तित्व में अटूट विश्वास ही उसकी विशेषता है। जनजातीय

दर्शन में प्रकृति और पुरखों के प्रति आभार का भाव निहित होता है। यह साहित्य समूचे जीव-जगत को समान महत्त्व देकर मनुष्य की श्रेष्ठता के दंभ को ख़ारिज करता है। जनजातीय साहित्य की कोई केन्द्रीय विधा नहीं है। अन्य साहित्यों की तरह उसमें आत्मकथात्मक लेखन भी उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि जनजातीय समाज 'मैं' में नहीं, 'हम' में विश्वास करता है। उसकी अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से होती है। वह सामूहिकता की बात करता हैं 'हम' की चिंता करता है। इसलिए जनजातीय लेखकों ने अपने संघर्ष में कविता को मुख्य हथियार बनाया है। जनजातीय साहित्य अपने दायरे में अन्य उत्पीड़ित अस्मिताओं के प्रति संवेदनशील है। इसके अंतर्गत शब्द, नृत्य, गीत, संगीत, चित्र, प्रकृति और समूची समष्टि समाहित हैं। साहित्य इन सभी अभिव्यक्तियों का समुच्चय है। आदिवासी दर्शन और साहित्य की अवधारणा है-

> सृष्टि सर्वोच्च नियामक सत्ता है। संपूर्ण सजीव और निर्जीव जगत तथा प्रकृति सबका अस्तित्व एक समान है। मनुष्य का धरती, प्रकृति और सृष्टि के साथ सहजीवी संबंध है।(टेटे, सं 2021:34)

डॉ. गंगासहाय मीणा के अनुसार-

> जनजातीय साहित्य अपनी रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी विद्रोह की परंपरा से लेता है। 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ तेज़ हुईं। जनजातीय शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोध स्वरूप जनजातीय अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा जनजातीय साहित्य है। इसमें सैंकड़ों भाषाएँ बोलने वाले देश भर के जनजातीय रचनाकार बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं। इसका भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ से शेष साहित्य से उसी तरह पृथक है, जैसे स्वयं जनजातीय समाज यह जनजातीय साहित्य की अवधारणा के निर्माण का दौर है। जनजातीय साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किये जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी संकटों और उसके ख़िलाफ़ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है।(अमीन, सं 2016:93)

नब्बे के दशक के पश्चात् हिंदी एवं आदिभाषी भाषाओं में लेखकों की उल्लेखनीय संख्या दिखाई देती है। रामदयाल मुंडा, मंजू ज्योत्सना, हेराल्ड एस तोपनो, वाल्टर भेंगरा 'तरूण', मंगल सिंह मुंडा, सिकरा दास तिर्की (मुंडारी भाषा), निर्मला पुतुल, बाबूलाल मुर्मू आदिवासी, शिशिर टुडु, आदित्य मित्र 'संताली' (संताली भाषा), रोज केरकेट्टा, वंदना टेटे, सरोज केरकेट्टा, जोवाकिम टोपनो, ग्लोरिया सोरेंग (खड़िया भाषा), एलिस एक्का, पीटरपॉल एक्का, जेम्स टोप्पो, महोदव टोप्पो, ग्रेसकुजुर (कुडुख भाषा), भुजंग मेश्राम, वाहरू सोनवणे, विनायक तुमराम, महादेव हांसदा (मराठी), निर्मल मिंज, दयामणि बारला, इग्नाशिया टोप्पो, वासवी कीड़ो, लटारी कवडू मडावी, परिमल हैम्ब्रम, जेवियर कुजुर, जसिंता केरकेट्टा, सुनील मिंज, अनुज लुगुन, ग्लैडसन डुंगडुंग, फिलिप कुजुर, सुषमा असुर, दमयन्ती सिंकू, फ्रांसिस्का कुजुर, शांति खलखो, बिटिया मुर्मू, हरिराम मीणा, शंकर लाल मीणा, लक्ष्मण गायकवाड़ इत्यादि जनजातीय रचनाकार अपनी मातृभाषा के साथ हिंदी में भी विविधतापूर्ण लेखन कार्य कर जनजातीय जीवन के संघर्ष व प्रतिरोध को स्वर प्रदान कर रहे हैं।साहित्य जगत में जनजातीय मुद्दों को उठाने, उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में इन पत्रिकाओं ने अहम योगदान दिया है- युद्धरत आम आदमी' (दिल्ली, हजारीबाग. संपादक- रमणिका गुप्ता), 'अरावली उद्घोष' (उदयपुर, संपादक- बीपी वर्मा 'पथिक'), 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' (रांची, संपादक- वंदना टेटे), 'आदिवासी सत्ता' (दुर्ग, छत्तीसगढ. संपादक-केआर शाह) आदि।

निष्कर्ष:

जनजातीय समाज के लोग मूल रूप से प्रकृतिजीवी और उत्सवधर्मी प्रवृति के होते हैं।वे कला के प्रति पूर्णतः समर्पित होते हैं।उनके व्यवहार, रहन-सहन, संस्कृति, उनके पर्व, लोकगीत, उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक गतिविधि सभी जनजातीय साहित्य के अंतर्गत आते हैं, जिन्हें इस आलेख के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। उनका साहित्य गल्प मात्र न

होकर यथार्थपरक है। जब किसी विशेष समुदाय द्वारा भोगा जीवन लिखा और पढ़ा जाने लगे, तो उसे साहित्य माना जाने लगता है। उपर्युक्त लेख में यह दिखाने का प्रयास भी किया गया है कि देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में विद्यमान जनजातियाँ अपने अनुकूल जीवन जीती हैं।उनका जीवन व्यवहार एक-दूसरे से भी नितांत भिन्न है। जनजातीय साहित्य एक धरोहर है,कला और संस्कृति का एक ऐसा पक्ष है, जिसे देश और दुनिया को जानना आवश्यक है। वह मुख्य धारा के मनुष्यों से ज्यादा प्रकृति के करीब हैं और जन, जंगल, जमीन उनकी विरासत।

ग्रंथ-सूची :

अमीन, खन्नाप्रसाद, सं.आदिवासी साहित्य.दिल्ली: श्री नतराज प्रकाशन, 2016.

टेटे, वंदना, सं.आदिवासी दर्शन और साहित्य.प्रथम. चेन्नई:नोसन प्रेस, 2021.

पांडेय, सतीश, शीतला प्रसाद और उषाकीर्ति, सं.आदिवासी केंद्रित हिंदी उपन्यास.नई दिल्ली:हिंदी बुक सेंटर, 2012.

वेरियर, एलविन.“आदिवासियों की कला”. आदिवासी साहित्य 2.7-8 (जुलाई-दिसंबर, 2016)

सोनवणे, वाहरू.“आदिवासी कला, साहित्य और संस्कृति”. आदिवासी साहित्य 2.7-8 (जुलाई-दिसंबर, 2016)

संपर्क-सूत्र :
सहायक प्रोफ़ेसर
स्वामी श्रद्धानंद
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 83-90

कबीर का आध्यात्म और उनका दर्शन

✍ डॉ. किरण हजारिका

शोध-सार :

हिंदी साहित्य में कबीरदास का प्रमुख स्थान है । वे एक ऐसे संत हैं, जिन्होंने भक्तिकालीन संत साहित्य को एक नया आयाम दिया । केवल साहित्य में ही नहीं, बल्कि भक्तिकालीन समाज में भी कबीर का अद्वितीय योगदान रहा है । कबीर विराट मानवता के कवि हैं और किसी एक विचार के आधार पर उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता । कबीर का दर्शन, उनका अध्यात्मबोध निर्गुण भक्ति पर आधारित है ।

बीज शब्द: *कबीरदास, दर्शन ।*

प्रस्तावना :

कबीर एक ऐसे सन्त हैं, जो परम्परा बोध के साथ स्वयं के अनुभव को महत्व देते हैं। वे परम्परा के अनुगामी भी हैं और स्वयं राही भी । कबीर पर पर्याप्त अध्ययन हुआ है, किन्तु कबीर का व्यापक अध्ययन एक स्थान पर उपलब्ध नहीं है । जैन धर्म में छह अन्धों और हाथी की कहानी के द्वारा यह बताया गया कि अंधों ने हाथी के बारे में अलग-अलग विचार रखे, जो अपूर्ण थे; किन्तु सभी के विचारों को मिलाकर हाथी का भौतिक स्वरूप स्पष्ट हो गया । कबीरदास के बारे में जो अध्ययन हुआ है, वह सूक्ष्म विषय का अध्ययन है उसमें सबका अध्ययन मिलकर भी अपूर्ण है; क्योंकि वह अन्धों के हाथी का स्थूल अध्ययन नहीं है । कबीर पर धुरन्धर हिन्दी के विद्वानों ने अपने-अपने अध्ययन प्रस्तुत किये हैं,

फिर भी अध्ययन की गुंजाइश बनी हुई है। प्रस्तुत शोध-पत्र में कबीर के दर्शन के संदर्भ में चर्चा की गयी है।

विश्लेषण :

कबीर ने अपनी अनुभूति को अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। उनकी यह अनुभूति किसी निर्धारित पैमाने से नहीं तौली जा सकती। महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने यदि भगवान के बारे में कुछ कहा है, तो मनुष्य को नकारा नहीं है। आज साहित्य के केन्द्र में मनुष्य आ गया है। कबीर ने परमात्मा को स्वीकार करते हुए उस मनुष्य को महत्व दिया है, जो परमात्मा को स्वीकारता है। परमात्मा को स्वीकार करने का अर्थ अनन्त संभावनाओं को स्वीकार करना है-

हद्द चलै सो बेहद चलै सो साध।।

हद बेहद दोनों तजे ताकर माता अगाधा।।(द्विवेदी 2013:366)

परमात्मा के विश्वास का अर्थ है अनन्त में विश्वास करना। सामान्य रूप से किसी कवि या विचारक की अधिक बातें तत्कालीन परिस्थितियों से जुड़ी होती हैं किन्तु इसके साथ ही कुछ बातें सार्वभौमिक होती हैं। कबीर की विचारधारा का एक महत्वपूर्ण भाग सार्वभौमिक है जिससे उनकी अमरता अक्षुण्ण है। उन्होंने परमात्मा को सार्वभौम सूक्ष्म एवं सर्वव्यापी माना है। परमात्मा एक ऐसे प्रत्यय हैं,जहाँ से समस्त मानवीय ऐक्य का सूत्र प्रसूत होता है। कबीर कहते हैं कि परमात्मा इतना विराट् है कि उन्हें सगुण-निर्गुण की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड उनकी सीमाएँ नहीं हैं। जो परमात्मा अनादि और अनंत हैं, वे पिण्ड और ब्रह्माण्ड की सीमा में कैसे आ सकते हैं? कबीर की इस विचारधारा का अभिप्राय यह है कि परमात्मा अपनी सृष्टि से बड़े हैं ,वे सर्वव्यापी हैं। इस सर्वव्यापकता एवं महानता के निरूपण में ही उनका दर्शन उनके काव्य में नियोजित होता है।

कबीर जिस ब्रह्मानुभूति की चर्चा करते हैं; वह योगियों की सहजावस्था है, जिसे योगी सहज अवस्था के नाम से पुकारते हैं, कबीर उसे रामरस कहते हैं। कबीर के निर्गुण राम सर्वव्यापी हैं, किन्तु उनके विचार योगियों से भिन्न हैं । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बताते हैं कि योगी जिसे ब्रह्म प्राप्ति समझते हैं, कबीर उसे साधन मात्र मानते हैं । इस प्रकार कबीर की दृष्टि में मौलिकता है । इस परमात्मा की सर्वव्यापकता के आधार पर ही कबीर ने समानता की बात कही है । उनके इस विचारधारा में समानता मानवतावाद की आत्मा है। कबीर प्रजातंत्र के बारे में कुछ नहीं जानते थे। उनके समय में सामन्तवाद का बोलबाला था । उनके ज्ञान की व्यापकता का कारण परमात्मा के प्रति प्रेम था, वे परमात्मा को जननी मानते थे ।

विचारकों ने सामान्य रूप से उनके दर्शन को अद्वैतवादी स्वीकार किया है । इसका कारण स्पष्ट है कि रहस्यानुभूति अद्वैतवाद की भूमि पर ही उत्सर्जित होती है । कबीर ज्ञानी और भक्त दोनों हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कबीर' में लिखते हैं-

> कबीर की वाणी वह लता है, जो ज्ञान के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी । (द्विवेदी 2013:316)

ध्यान के लिए कबीर ने योगियों की पद्धति को अपनाया, परन्तु उन्होंने योगियों की पद्धति को समग्रता से ग्रहण नहीं किया। उन्होंने रामानन्द से भक्ति की जो पूँजी ग्रहण की थी, उसे व्यापक बनाया। सच्चाई यह है कि कबीर ने मानव मात्र की एकता की संकल्पना भक्त के रूप में ही किया था। उन्होंने न केवल स्वयं रामनाम का मर्म समझा था, वरन् औरों को समझाया भी था । उन्होंने सबमें एक राम तत्व को व्याप्त देखा था । कबीर ने भेदभाव का विरोध किया था । ऊँच-नीच, जात-पात, ज्ञानी-मूर्ख, हिन्दू-मुसलमान, आत्म-पर, राम-रहीम, केशव-करीम का अनुभव करने वालों को फटकारा था। यही कबीर का मानवतावाद है। यही उनका विशिष्ट अवदान है ।वे इस अर्थ में क्रान्तिकारी हैं कि वे सबके भीतर

एक आत्मा की बात को बोध के साथ स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपनी आत्मप्रेरणा के आधार पर समस्त मानव की एकता की बात को जोर देकर कहा है। उनके विचार से समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी परमात्मा हैं। इतना ही समस्त ब्रह्माण्ड परमात्मा का विस्तार है, यह विश्व परमात्मा से अलग नहीं है। सोने का बना हुआ गहना भी सोना है।

आज वैश्वीकरण, विश्व गाँव की धारणा मानवता का विषय बना हुआ है। व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक रूप में वैश्वीकरण की क्रिया विलासिता के लालच के चलते शक्तिशाली राष्ट्र दादा तो बन गये हैं, त्राता नहीं बन सके हैं। प्रेम स्वार्थ से ऊपर उठे बिना मानवता को अनुप्राणित नहीं कर पाता। आज विज्ञान समस्त विश्व को इलेक्ट्रान का प्रवाह मानता है। उसके अनुसार या तो पदार्थ ऊर्जा में बदल रहा है या ऊर्जा पदार्थ में। ऐसी स्थिति में जड़ता-संचालित सिद्धान्त से ऊपर उठने के लिए अद्वैतवादी दर्शन को समझने की आवश्यकता है, जिसे कबीर ने समझा था। आज के विचारक को भी यह दृढ़ता से समझना होगा कि पदार्थ और ऊर्जा जिसे दर्शन की भाषा में शिव और शक्ति कहा गया है, उसकी लीला में भ्रमित होने से अच्छा है, उस लीला में सम्यक् रूप से सक्रिय होना। भोगवादी दृष्टि का विकास एकांगी अभिरूचि के कारण होता है। ऋषियों और सन्तों ने मानव की भोगवादी कमजोरी को समझकर उसे चेताया है।

कबीर का बोध बहुत व्यापक था, उन्होंने माया की निन्दा की तथा यह बात बताया कि माया ठगिनी है वह तीन गुणों का फंदा लिए घूमती रहती है। यहाँ कबीर ने माया को वासना के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने वासना को बुरा माना है। संसार की वस्तुओं का उल्लेख माया के रूप में न करके उनसे लगाव को कबीरदास ने बुरा माना है। संसार के अनित्यता की पहचान उन्हें है। यदि संसार परिवर्तनशील है, तब उसके प्रति प्रगाढ़ मोह दुखदायी तो होगा ही। उससे छुटकारा पाने का रास्ता प्रभु चरणों में प्रेम करना है।

भारतीय संस्कृति की महती विशेषता रही है 'त्यक्तेन भुंजी' । कबीर लालच को बुरा बताते हैं। उनके अनुसार अपनी ईमानदारी की कमाई रोटी खाने में कोई हर्ज नहीं है। दुःखद है दूसरे की घी चुपड़ी रोटी देखकर ललचना । उनका प्रभु तो कण-कण में व्याप्त है। वह खुले आकाश में बहती हुई हवा में है । परमात्मा की इससे स्पष्ट व्याख्या क्या हो सकती है? उनके दर्शन में उपनिषदों का भाव समाया हुआ है । सर्वव्यापी परमात्मा को उन्होंने केवल वाणी से नहीं कहा था । उन्होंने ब्रह्मानुभूति के पश्चात होने वाली बोधात्मकता को जिस सच्चाई से व्यक्त किया है, वह कबीर की कवि और सन्त दोनों से पृथक एक महामानव के रूप में प्रस्तुत करता है। वे अपने व्यक्तित्व की चाभी निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत करते हैं-

ना मैं धर्मी, नाहीं अधर्मी, ना मैं जतीन कामी हो,

ना मैं कहता, ना मैं सुनता, ना मैं सेवक स्वामी हो।

ना मैं बन्धा, ना मैं मुक्ता, ना मैं विरत न रंगी हो।

ना काहू से न्यारा हुआ, ना काहू के संगी हो।

ना हम नरक लोक को जाते, नाम हम सुर्ग सिधारे हो,

सब ही कर्म हमारा कीया, हम कर्मन ते न्यारे हो।। (तिवारी 2009:63)

इन पंक्तियों में कबीर का एक ऐसा व्यक्तित्व उभरता है, जो मानवता के लिए किसी भी प्रकार का त्याग कर सकता है।

डॉ. अमत्र्य सेन ने 'दि आइडिया ऑफ जस्टिस', न्याय के स्वरूप में लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अपराक्राम्य अधिकार होते हैं । विश्व के इतिहास में इस प्रकार के अधिकार के प्रयोग करने वाले व्यक्तियों में महाभारत के श्रीकृष्ण, भारत के महात्मा गान्धी, अमेरिका के अब्राहम लिंकन दक्षिणी अफ्रीका के नेल्सन मंडेला के नाम लिये जा सकते हैं । ऐसे व्यक्तियों का व्यष्टि और समष्टि एक होता है । कबीर का आध्यात्मिक दर्शन ऐसे ही व्यक्तियों को पैदा करता है । सामान्य रूप से कबीर के दर्शन में

ऐसी भावना का पुट है, जहाँ से किसी भी युग की मानवता को विकसित करने वाला प्रकाश उत्सर्जित होता है।कबीर के विराट व्यक्तित्व के निर्माण में योगियों की साधना, रामानन्द की भक्ति भावना एवं सूफियों की प्रेम भावना का अन्वय है। यही कारण है कि उनका विराट् व्यक्तित्व उसी प्रकार विकसित हुआ है, जैसे गंगा विविध नदियों का जल लेकर अन्त में अगाध समुद्र में लीन होती है। उन्होंने सम्पूर्ण साधना के सहारे शक्ति अर्जित की किन्तु उनका व्यक्तित्व इन साधनाओं के गुणों का योगफल नहीं है, उसमें मानवता का रसायन है। यदि कबीर केवल साधनाओं का वर्णन अपनी कविता में करते, तो वे एक साधक मात्र रह जाते हैं । ऐसी स्थिति में उनकी उपयोगिता केवल साधक के रूप में रह जाती, वे युग द्रष्टा नहीं बन पाते।उन्होंने सारतत्व को ग्रहण करते हुए भी मानवता की बात की। यद्यपि समीक्षक यह मानते हैं कि यह उनका प्रमुख विषय नहीं है, किन्तु वे मानवतावादी दृष्टि को छोड़कर कबीर की समीक्षा नहीं कर सकते । उन्होंने असमानता एवं ढोंग पर जो बातें कहीं हैं वे उनकी मानवता भरी दृष्टि के प्रमाण हैं। मनुष्य से काटकर ब्रह्म का वर्णन नहीं किया जा सकता है, कबीर इस सत्य को भली- भाँति समझते थे।

कबीर सामाजिक असमानता की बात अनेक स्तरों पर करते हैं । एक स्थल पर वे निर्धन की बात करते हुए कहते हैं कि जो निर्धन है, उसका आदर कोई नहीं करता। यदि निर्धन व्यक्ति धनी के यहाँ जाता है, तो वह मुँह फेर लेता है ; किन्तु वहीं धनी जब निर्धन के यहाँ आता है, वह आदर करता है। कौन समझावे कि धनी और निर्धन तो भाई-भाई हैं। कबीर ज्ञानी थे, दार्शनिक थे ,इसीलिए उन्हें सामान्य आदमी के साथ होने वाले अन्याय का दुःख था। परदुःख कातरता का बोध विराट् हृदय में आता है। शेक्सपियर के नाटक किंग लियर में जब किंगलियर गरीबी की पीड़ा का अनुभव कर लेता है, तब वह कहता है कि जब तक वह भिखारी रहेगा, चिल्लाता ही रहेगा और कहता रहेगा कि अमीर होना गुनाह नहीं है। किन्तु यदि वह अमीर हो गया तो फिर उसे यही कहना अच्छा लगेगा कि गरीबी से बड़ी कोई बुराई नहीं है (तिवारी 2009:123)।

कबीर ने गरीबी झेली थी, खुली आँखों से उन्होंने समाज को देखा था। आज के युग की सबसे बड़ी बुराई यह है कि लोगों की सहानुभूति भी अपने वर्ग के लोगों से होती है, दूसरे वर्ग से नहीं।

डॉ. अमत्र्य सेन न्याय का स्वरूप में 'अनावृत्त समदर्शिता' पर विचार करते हुए बताते हैं-

> दुनिया में लोग अपने वर्ग या अपने से सम्बन्धित लोगों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, जबकि आज के युग में अनावृत्त समदर्शिता की आवश्यकता है। अनावृत्त समदर्शिता जाति, धर्म एवं वर्ग से निरपेक्ष होती है। कबीर की समदर्शिता परमात्मा के मानक पर प्रतिष्ठित है। वे सबके प्रति समान विचार रखते हैं। आज की प्रजातांत्रिक धारणा भी अनावृत्त समदर्शिता हैं। (सेन 2010:180)

भारतीय संविधान में सबकी समता के अधिकार की बात की गयी है। संविधान में व्यक्ति की समानता, स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा में कबीर की समानता की भावना को सरलता से ढूंढा जा सकता है।

संविधान की प्रस्तावना में लिखा है-

> हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण राष्ट्र सम्पन्न, प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी एवं निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता (वसु 2015:23)

कबीर ने कोई दर्शन नहीं पढ़ा था, न तो उनके समय में समानता, स्वतंत्रता, बन्धुता का सिद्धान्त प्रचलित था। उन्होंने ब्रह्म को सृष्टि का एक मात्र कर्ता मानते हुए अपने विचारों को व्यक्त किया है। इन विचारों के पीछे उनका अद्वैत दर्शन है, आज भारत के संविधान की प्रस्तावना में जो लिखा गया है, कबीर के विचार उसके समान्तर है, यद्यपि उन्होंने प्रजातंत्र एवं समाज का अध्ययन नहीं किया था।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कबीर का दर्शन मानवतावादी है। स्वामी विवेकानन्द ने मानव सेवा को महत्व दिया था, कबीर ने मानवता की असमानता पर सवाल उठाया, उन्होंने ब्रह्म के साथ मानव समाज का दर्शन किया, यही उनकी साधना की पूर्णता है।

ग्रंथ-सूची :

तिवारी, रामचन्द्र.मध्ययुगीन काव्य-साधना. वाराणसी:विश्व विद्यालय प्रकाशन, 2009.

दास, श्यामसुन्दर.कबीर ग्रंथावली. काशी:नागरी प्रचारिणी सभा, 1928.

द्विवेदी, हजारी प्रसाद.कबीर. नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, 2013

वसु, आचार्य दुर्गादास.भारत का संविधान : एक परिचय. 2015.

सेन, अमत्र्य.न्याय का स्वरूप. दिल्ली:राजपाल एण्ड सन्स, 2010.

संपर्क-सूत्र :
अध्यक्ष, टेङाखात महाविद्यालय
डिब्रुगड़, असम
ई-मेइल: hazarikakiran68@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 91-100

धर्मवीर भारती-कृत 'कनुप्रिया' में मिथकीय योजना

✍ उदिप्त तालुकदार

शोध-सार:

कालनिरपेक्ष पुरा-कथाएँ लगभग प्रत्येक समाज-जीवन की लोक परंपरा की अन्यतम नींव होती हैं। बदलते समय के साथ इन पुरा-कथाओं की प्रासंगिकता कभी कम नहीं होती। रामायण की कथा, महाभारत की कथा, राधा-कृष्ण के प्रेमाख्यान आदि भारतीय समाज-जीवन की पुरा-कथाएँ हैं। इन पुरा-कथाओं की कालातीत प्रासंगिकता को देखते हुए युग चेतस साहित्यकार इन पुरा-कथाओं को अपनी रचनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण करते हैं। साहित्य में ऐसी पुरा-कथाएँ जब आधुनिक संदर्भों में नवीन अर्थों का संयोजन करती हैं, उन्हें 'मिथक' की संज्ञा प्राप्त होती है। हिंदी साहित्य जगत में मिथकीय योजना की एक लंबी परंपरा रही है। नयी कविता के दौर में यह प्रवृत्ति अधिक प्रभावी ढंग से उभरी। इस दौर में मिथकीय योजना के आधार पर कथा का संयोजन करनेवाले एक अन्यतम सशक्त हस्ताक्षर हैं धर्मवीर भारती। भारती द्वारा रचित 'अंधायुग', 'कनुप्रिया' मिथकीय योजना की दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। भारती ने 'कनुप्रिया' काव्य में राधा-कृष्ण के प्रेमाख्यान को नवीन आयाम देकर युद्ध से जर्जर समाज एवं मानव-जीवन की अवस्थाओं को दर्शाने का प्रयास किया है।

बीज शब्द: *मानवीय मूल्य, राधा-कृष्ण, युद्ध, प्रेम*

प्रस्तावना:

लोककथा, दंतकथा, पौराणिक कथा आदि को किसी भी समाज-जीवन के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संदर्भ में अलग दर्जा प्राप्त है। भारतीय समाज में इस तरह की कथाओं की एक प्राचीन

परंपरा रही है । समय-समय पर इन कथाओं को रचनाकार अपनी कल्पना-शक्ति से नवीन स्वरूप, नवीन आयाम देकर साहित्य में स्थान देते आये हैं । रचनाकार की सृजनात्मक प्रतिभा के बल पर जब यह पुरा-कथा नवीन संदर्भों में प्रयुक्त होती है, तो उसे मिथक की संज्ञा मिलती है । प्रत्येक भाषा के साहित्य में समकालीन स्थिति को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करने हेतु रचनाकार अपनी संस्कृति से जुड़े विविध मिथकों का प्रयोग करते हैं । हिंदी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है । हिंदी साहित्य जगत के कई लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों ने अपनी कालजयी रचनाओं में मिथकीय योजना की है । इस शोधालेख में हिंदी साहित्य धारा की नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर धर्मवीर भारती के शिल्पी अंतःर्मन की अन्यतम उत्कृष्ट रचना 'कनुप्रिया' में अभिव्यक्त मिथकों पर विचार-विमर्श किया गया है ।

मिथक हिंदी काव्य-यात्रा के सहचर हैं, जीवनी शक्ति है । निश्चय ही मिथक-विन्यास के बिना काव्य-रचना और मिथकीय आलोचना के बिना समकालीन काव्य-विमर्श अधूरे बने रहेंगे । पुरा-कथाओं को किस संदर्भ में और क्यों पुनःजीवित कर रचनाकार नयी रचना की सृष्टि करते हैं , उसका अध्ययन अत्यंत आवश्यक है । इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन के महत्वपूर्ण हो जाता है । राधा-कृष्ण के प्रेमाख्यान पर आधारित 'कनुप्रिया' में भारती ने क्यों और किस दृष्टि से मिथक का प्रयोग किया है, उसको समझना इस अध्ययन का उद्देश्य है ।

अध्ययन की पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन के दौरान आधार ग्रंथ के रूप में 'कनुप्रिया' रचना को लिया गया है । इस आधार ग्रंथ के साथ-साथ अन्य समीक्षात्मक ग्रंथों को संदर्भ ग्रंथ के रूप में ग्रहण किया गया है । इन ग्रंथों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर विश्लेषणात्मक पद्धति के जरिए प्रस्तुत शोध-पत्र तैयार किया गया है ।

विश्लेषण :

युद्ध मानवीय बुद्धि का वह ध्वंसात्मक व्यापार है, जिससे सामाजिक संरचना में विघटनकारी परिवर्तन होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के अनंतर ऐसे विघटनकारी परिवर्तनों ने संपूर्ण वैश्विक पटल को झकझोर दिया था। इससे जनसाधारण की मनोवृत्ति दूषित होने लगी थी। फलस्वरूप प्रेम, विश्वास जैसी मानवीय मूल्यों पर प्रश्न चिह्न खड़ा हो गया था और समाज पतनोन्मुख होने लगा था। द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न इन विषम परिस्थितियों ने कला, साहित्य, धर्म एवं दर्शन में एक नये दृष्टिकोण को जन्म दिया। इसलिए तत्कालीन संवेदनशील साहित्यकार नये भावबोध और नयी शैली में साहित्य-रचना की ओर उन्मुख हुए। यह नया भावबोध एवं नयी शैली प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार के साहित्य में दृष्टिगोचर होने लगी थी। इसमें युद्ध के कारण समाज में उत्पन्न विषम परिस्थियों को पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण कर साहित्य की रचना होने लगी। हिंदी साहित्य में नयी कविता के दौर में युग चेतस कवि धर्मवीर भारती द्वारा राधा-कृष्ण की प्रेमाख्यानक कथा को आधार बनाकर लिखी गयी भावप्रधान काव्य 'कनुप्रिया' ऐसी ही एक रचना है। 'कनुप्रिया' को क्रमशः 'पूर्वराग', 'मंजरी परिणय', 'सृष्टि संकल्प', 'इतिहास' और 'समापन' शीर्षकों में विभाजित किया गया है। इनमें से प्रथम तीन शीर्षकों में बहुमुखी प्रणय के विविध आयाम दृष्टिगोचर होते हैं तो, वहीं अंतिम दो शीर्षकों में राधा के प्रणम को नया परिप्रेक्ष्य दिया गया है। राधा-कृष्ण के प्रणय की कथा अत्यंत प्राचीन है। इस कथा को पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण कर लिखी गयी अधिकांश रचनाओं में केवल राधा के विरह को ही प्रधानता मिली। इस क्रम में संस्कृत के जयदेव, बांग्ला के चंडीदास, हिंदी के सूरदास, नंददास, बिहारी, रत्नाकर, हरिऔध आदि कवि आते हैं। परंतु धर्मवीर भारती ने राधा की भावानुकूल तन्मयता और सामयिक संदर्भों के प्रति उसकी चेतना को 'कनुप्रिया' काव्य में उकेरा है। कवि ने राधा के माध्यम से अस्तित्व के प्रश्न को उठाया है। कवि ने राधा द्वारा उठाये गये प्रश्नों के माध्यम से युद्ध से उत्पन्न विघटनकारी मूल्यों के स्थान पर मानव जीवन की तन्मयता के क्षणों के महत्व को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। इस

प्रकार कवि ने राधा-कृष्ण की कथा को विरह के उद्गार से ऊपर उठाकर आधुनिक संदर्भों में नवीन अर्थों का संयोजन कर एक युग सापेक्ष महत्व प्रदान किया है।

मिथकीय संकल्पना एवं हिंदी साहित्य:

मिथक शब्द अंग्रेजी के 'myth' का हिंदी रूप है। ऐसा माना जाता है कि हिंदी जगत को यह शब्द आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से मिला। 'मिथ' मूलतः ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है - 'वाणी का विषय'। 'वाणी का विषय' से तात्पर्य है- एक कहानी, एक आख्यान, जो प्राचीन काल में सत्य माना जाता था और कुछ रहस्यमय अर्थ देता था। 'मिथ' शब्द के कुछ कोशगत अर्थ भी हैं- कोई पुरानी कहानी अथवा लोक विश्वास, किसी जाति का आख्यान, धार्मिक विश्वासों एवं प्रकृति के रहस्यों के विश्लेषण से युक्त देवताओं तथा वीर पुरुषों की पारंपरिक गाथा, कथन, वृत्त, किवदंती, परंपरागत कथा आदि। यदि इन सब अर्थों की मीमांसा की जाए, तो एक बात सब अर्थों के मूल में किसी न किसी सीमा तक लक्षित है- सबके मूल में कथा तत्व का होना।

पाश्चात्य परंपरा में मिथकों पर विचार-विमर्श की एक सशक्त परंपरा रही है। परंतु हिंदी में मिथकों को मोटे तौर पर कम ही परिभाषित किया गया है, जिसका कारण था भारतीय पुराणों को पुनरुत्थानवादी ग्रंथों के रूप में न देखा जाना। हिंदी में पुरा-कथाओं के प्राक-प्रवाह में विद्यमान समकालीन दर्शन को मिथक कहा गया। सबसे पहले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मिथक-मीमांसा प्रस्तुत की। उन्होंने कहा-

> मिथक तत्व उस सामूहिक मानव की भाव-निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ मनोविज्ञानी आर्किताइल इमेज (आद्यबिंब) कहते हैं।(मिश्र 2014: 196)

डॉ. नगेंद्र 'मिथक' शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी से स्वीकार करते हैं। उनका मानना है-

> मिथक अंग्रेजी के मिथ शब्द का हिंदी पर्याय है और अंग्रेजी का मिथ शब्द यूनानी भाषा के शब्द माइथामस से व्युत्पन्न है; जिसका अर्थ है आप्तवचन या अतर्क्य कथन, जिसका प्रयोग अरस्तू ने फ्रेबिल (कथा-विधान) के रूप में किया है।(मिश्र 2014: 200)

मिथक आदिम मनुष्य के अग्रचेतना का संसार है जो आधुनिक तथा भविष्यपथ पर दिशा अथवा पथ प्रकाश का कार्य करता है । मिथक पौराणिक आदिम कथा का आधार लेकर समग्र जीवन को एक नयी व्याख्या देता हुआ मानव को आदिम भावों से आस्था जगाता है । मिथक मनुष्य तथा समुदाय की आस्था का प्रतीक है । मिथकों की वस्तु-परिधि में युग-युग के बेल को स्पर्श किया गया है । हिंदी में मिथकीय पुरा-कथाएँ केवल ऊपरी घटनाक्रमों तक अवरुद्ध नहीं था, बल्कि इनका प्रतीकात्मक स्वरूप था। इनके प्राक्तन बिंबों और प्रतीकों से नव-नवोद्भव अर्थ तरंगें निरंतर उठती रहती थीं, जिनका प्रयोग छठें-सातवें दशक के दृष्टिसंपन्न नए कवियों ने किया । जब इन कवियों ने समकालीन मनःस्थिति और मूल्यवादी परिस्थितियों के हल के लिए पुरा-प्रसंगों और पुराण कथाओं का सर्जनात्मक उपयोग करना शुरू की, तब उनके सृजनात्मक नव प्रयासों को मिथक कहा गया । ये मिथक टूटते विश्वासों, खंडित होते सामाजिक मूल्यों और मानवीयता के क्षरण को रोकने में सार्थक साबित हुए । हिंदी साहित्य में संप्रति वैदिक एवं पौराणिक आख्यानों के लिए मिथक शब्द का प्रयोग अधिक प्रचलित हो चुका है ।

हिंदी साहित्य निरंतर मिथकों से जुड़ा प्रतीत होता है । इसके विकासक्रम को देखने पर ज्ञात होता है कि हिंदी साहित्य का कोई भी युग मिथकीय अवचेतना से अछूता नहीं है । प्रत्येक युग में भावबोध से लेकर कलात्मक अभिव्यक्ति तक सर्वत्र मिथकों की उपादेयता दर्शनीय है । नाथों-विद्यापति की रचनाओं से लेकर भक्तिकालीन सगुण-निर्गुण धारा में मिथकीय योजना दृष्टिगोचर होती रही । परंतु हिंदी साहित्य के आधुनिक काल तक आते ही मिथक कथाएँ साहित्य के ऐसे चौराहे पर पहुँच गयी थीं, जहाँ से वे अनेक दिशाओं में आगे बढ़ सकती थीं । आधुनिक काल के भी द्विवेदी युग के साहित्य की मूल प्रवृत्ति इतिवृतात्मक होने के कारण काव्य के क्षेत्र में मिथकीय चेतना का बहुमुखी विकास हुआ । परंपरागत पूज्य भावनाओं के आलंबन मिथकीय पात्रों का सहज सामाजिक मनुष्य के रूप में अंकन

किया गया । इस तरह मिथकीय योजना एक नयी दिशा की ओर आगे बढ़ने लगी । छायावादोत्तर साहित्य में मिथक कथाओं पर आधारित वृहत साहित्य उपलब्ध है । छायावादोत्तर साहित्य में नयी कविता हिंदी की ऐसी धारा है, जिसमें पहली बार मिथक का सार्थक और मार्मिक उपयोग दिखाई पड़ता है । अनेक स्थलों पर यांत्रिक युग, युद्ध की विभीषिका के समानांतर मिथक के प्रसंगों का चुनाव किया गया है । साहित्य का इतिहास साक्षी है कि हिंदी के नए कवियों ने छायावादियों और प्रयोगवादियों की तरह 'मिथक' की कोई परिभाषा गढ़ने की कोशिश नहीं की । वास्तव में नयी कविता की प्रबंधात्मक रचनाओं में प्रयुक्त मिथक अप्रिभाषेय रहकर ही अपनी बहुआयामी भूमिका के निर्वाह में सफल रहे हैं । नयी कविता की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में धर्मवीर भारती, दुष्यंत कुमार, कुँवर नारायण, नरेश मेहता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

'कनुप्रिया' और मिथकीय योजना:

धर्मवीर भारती की मिथकीय काव्य-कृति 'कनुप्रिया' छठे दशक के अंतिम दशक की एक महत्वपूर्ण रचना है । 'सूरसागर' की राधा तथा 'महाभारत' का युद्ध प्रसंग कनुप्रिया की कथा के मूल स्रोत हैं । कृष्ण काव्य परंपरा में 'सूरसागर' के पश्चात् राधा को उसकी संपूर्णता के साथ प्रस्तुत करनेवाली 'कनुप्रिया' महत्वपूर्ण कृति है । कवि ने राधा की चारित्रिक बुनावट में अपनी रागात्मकता का अधिकतम प्रयोग किया है । राधा के स्मृति-चित्रों के माध्यम से महाभारतकालीन कथा-संकेतों का चित्रण कवि की मौलिक उद्भावना है । कवि ने कथा के संकेतों में युगीन सच्चाई को जोड़कर देखने का प्रयास किया है । यही कारण है कि 'कनुप्रिया' एक नया पुराख्यानक प्रयोग है, जिसके कथासुत्रों में युग सत्य को अभिव्यक्ति मिली है । भावानुकूलता की दृष्टि से 'कनुप्रिया' मौलिक काव्य-कृति है । प्रस्तुत रचना में शृंगार वर्णन कवि का उद्देश्य नहीं है, अपितु तन्मयता के रागात्मक क्षण को सार्थक प्रतिपादित करने हेतु इस प्रेम-वर्णन की अवतारणा हुई है । कवि का मानना है कि प्रेम के अभाव में सत्य और न्याय

की महत्तर धारणा व्यर्थ हो सकती है। युद्ध की पृष्ठभूमि विनाशक होती है। इस भीषण विभीषिका में मानवीय मूल्यों को उबारने के लिए कवि ने राधा-कृष्ण को प्रणयाख्यानक धरातल पर रखकर युद्ध और प्रेम की अभिव्यंजना की है। 'एक प्रश्न' में कवि कहते हैं-

हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ
नभ को कँपाते हुए, जीती हुई सेनाएँ
भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएँ युद्ध की
क्या वे सार्थक हैं ?(भारती2014:68)

स्वातंत्र्योत्तर मिथकीय प्रबंध काव्यों में चरित्रों की विशिष्टता भी रही है। यहाँ तक कि शीर्षक भी चरित्र प्रधानता का परिचय देता है। भले ही वह चरित्र पौराणिक नाम से रहा हो, पर मानसिकता आधुनिक रही है। उन मिथकीय प्रबंधों के चरित्र की वाणी और व्यवहार से देवत्व की जगह साधारण की अनुभूति होती है। धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' ऐसी ही एक रचना है। इसमें पारंपरिक राधा के स्थान पर नवीन भावना की प्रकृति की राधा का परिचय मिलता है। यह राधा काम-कला में निपुण तो है ही, कृष्ण की सृजन-संगिनी भी है। कवि ने अपनी कल्पना और संवेदना से राधा के चरित्र को मिथकीय फलक पर उद्घाटित करते हुए उसके विभिन्न आयामों को चित्रित किया है। इस रचना में प्रतिफलित मिथकीय पात्र राधा अपने जीवन में कृष्ण की भूमिका को स्वीकारते हैं, कृष्ण से ही उसका सारा संसार है, कृष्ण से उसके ज्ञान-भंडार की पूर्ति होती है। शायद इसलिए 'एक प्रश्न' में राधा कहती है-

तो भी मैं क्या करूँ कनु,
मैं तो वही हूँ
तुम्हारी बावरी मित्र

जिसे सदा उतना ही ज्ञान मिला

जितना तुम ने उसे दिया(भारती 2014:67)

परंतु ऐसा होने पर भी प्रस्तुत रचना में राधा कृष्ण से प्रश्न करती है, जिसका चित्रण 'एक प्रश्न' शीर्षक कविता में होता है । राधा को महाभारत का युद्ध सार्थक प्रतीत नहीं होता । इसलिए कृष्ण से प्रश्न करती हुई वह कहती है-

अर्जुन की तरह कभी

मुझे भी समझा दो

सार्थकता है क्या बंधु ? (भारती 2014:69)

'सेतु: मैं' में राधा कृष्ण से कहती है-

सुनो कनु, सुनो

क्या मैं सिर्फ सेतु थी तुम्हारे लिए

लीलाभूमि और युद्धक्षेत्र के

अलंघ्य अंतराल में !(भारती 2014:60)

अतः 'कनुप्रिया' रचना में प्रश्न करती हुई राधा का चरित्र उभरती है । वह युद्ध के आधार पर कृष्ण के इतिहास निर्माण की प्रक्रिया को सीधे तौर पर अस्वीकार नहीं करती । इस प्रकार 'कनुप्रिया' के द्वारा एक चेतन नारी पात्र उभरकर आती है ।

जिस प्रकार उत्सव पुरुष नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' नामक रचना में राम को संशयग्रस्त दिखाया है, वैसे ही 'कनुप्रिया' में राधा की दृष्टि से कृष्ण का संशयग्रस्त स्वरूप भी स्थान विशेष में नज़र आता है । कवि ने कनु का सार्थक उपयोग आधुनिक मानव के आंतरिक द्वंद्व, युद्ध के

औचित्य तथा अस्मिता के संकट के समाधान के रूप में किया है । कृष्ण ने जिस साधन के जरिए इतिहास निर्माण करने की कोशिश की, उसी साधन के फलस्वरूप वह द्वंद्व में है, संशय में है । इसका प्रतिफलन 'शब्द: अर्थहीन' में राधा की निम्नोक्त पंक्तियों से हो जाता है-

न्याय-अन्याय, सद्-असद्, विवेक-अविवेक-

कसौटी क्या है ? आखिर कसौटी क्या है ?(भारती 2014:75)

इस प्रकार धर्मवीर भारती ने मिथकीय पात्र राधा और कृष्ण को आधुनिक संदर्भ में मनोवैज्ञानिक स्तर पर निरूपण किया है । द्वितीय महायुद्ध के धरातल पर उत्पन्न घोर निराशा, अव्यवस्था, पीड़ा से खंडनात्मक मनोवृत्ति का विस्तार 'कनुप्रिया' के माध्यम से हुआ है । वैश्विक उत्थान का महत्वपूर्ण कार्य कवि की महत्वकांक्षा रही है और इस दिशा में जीवन के प्रति आस्थाभाव जगाकर उन्मुक्ति के प्रयास में यह मिथकीय रचना कार्यरत है ।

निष्कर्ष:

नयी कविता में मिथकों को काव्य-मनोबल के रूप में प्रयुक्त किया गया । मिथकों के इसी काव्य-मनोबल ने नयी कविता को समय-सापेक्ष बहुआयामी आकार दिया । धर्मवीर भारती ने मिथकीय धरातल पर अपने युग के मानवीय जीवन में अकस्मात उत्पन्न विषमताओं, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मूल्यों के बेतहाशा क्षरण और विश्वस्तर पर जटिल युद्ध-संत्रासों के मनुष्य के सैतानी संक्रमणों के नए अध्याय लिखे । 'कनुप्रिया' का आधार पुराख्यान भले ही हो, परंतु इनके माध्यम से तत्कालिक समसामयिक समस्याओं का भली-भाँति चित्रण किया गया है । 'कनुप्रिया' जैसे मिथक-काव्य की पृष्ठभूमि में परंपरागत दार्शनिक तत्वों की अधिकता होने से उसमें सन्निहित ब्रह्म, जीव और जगत् की सार्थकता को समीक्षकों ने मानवीय धरातल पर रखकर समीक्षा की है । इस मिथक-काव्य में भारती ने मानवीय सत्ता की अंतश्चेतना और बहिर्मुखी वृत्तियों को उजागर करने में अपनी कारयित्री प्रतिभा

का परिचय दिया है। यह ही कारण है कि 'कनुप्रिया' में संगुंफित मिथकों की ध्वनियाँ आज भी अपनी गुणवत्ता बनायी हुई हैं। पौराणिक मिथकाश्रित कथा के जरिए आधुनिक भावस्पंदन निरूपण में निःसन्देह 'कनुप्रिया' एक सफल रचना काही जायेगी।

ग्रंथ-सूची:

कुमार, रश्मि. नई कविता के मिथक काव्य. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2009.

भारती, धर्मवीर. कनुप्रिया. नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2014.

मिश्र, भगीरथ.पाश्चात्य काव्यशास्त्र.वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2014.

संपर्क-सूत्र:
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
आर्य विद्यापीठ महाविद्यालय(स्वतंत्र)
ई-मेइल: udiptatalukdar94@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 101-116

'रसीदी टिकट' और 'आधा लेखा दस्तावेज' का तुलनात्मक अध्ययन

✍ **हिरण वैश्य**

शोध-सार :

अमृता प्रीतम और डॉ. मामणि रयछम गोस्वामी दोनों भारतीय साहित्य गगन के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। अमृता प्रीतम मूलत: पंजाबी साहित्यकार हैं। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध आत्मजीवनी आदि की देन से पंजाबी साहित्य को समृद्ध किया है। उनके प्राय: सभी साहित्य हिंदी में भी उपलब्ध हैं। वही डॉ. मामणि रयछम गोस्वामी को असमीया साहित्य में गद्यकार के रूप में पहचाना जाता है। यद्यपि उन्होंने कहानी के माध्यम से साहित्य सृष्टि में कदम रखा था; पर उपन्यासों ने उन्हें लोकप्रियता की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। कहानी और उपन्यास के अलावा उन्होंने जीवनी, आत्मजीवनी, कविता, निबंध आदि भी लिखे । साहित्य की विविध विधाओं में साहित्य सर्जना करने पर भी सभी साहित्यकार आत्मजीवनी नहीं लिखते; पर अमृता प्रीतम और मामणि रयछम गोस्वामी ने क्रमश: 'रसीदी टिकट' और 'आधा लेखा दस्तावेज' शीर्षक से अपनी अपनी जीवनियाँ लिखीं। इन आत्मजीवनियों में दोनों साहित्यकारों के जीवन साकार हो उठे हैं।

बीज शब्द : *अमृता प्रीतम, मामणि रयछम गोस्वामी, आत्मजीवनी,संघर्ष,प्रेम,निराशा*

प्रस्तावना:

सन् 1976 में पंजाबी में और सन् 1988 में हिंदी में प्रकाशित आत्मजीवनी 'रसीदी टिकट' में अमृता प्रीतम ने जिस निर्भीकता एवं बिना किसी हिचकिचाहट के अपने जीवन के पैंसठ साल का चित्र खींचा है, वैसे ही सन् 1988 में असमीया भाषा में प्रकाशित 'आधा लेखा दस्तावेज' में मामणि रयछम गोस्वामी ने बचपन से लेकर दिल्ली विश्वविद्यालय के आधुनिक भारतीय भाषा के असमीया विभाग में कर्मरत रहने तक की कथा को समेटा है।

अध्ययन का महत्व :

अमृता प्रीतम और डॉ. मामणि रयछम गोस्वामी ने जिसतरह से खुद को प्रस्तुत किया है, सही मायने में ऐसा उदाहरण बेजोड़ है। दोनों अत्यंत ही निर्भीक लेखिका थीं, संवेदनशील थीं और

प्रेम में स्वतंत्रता चाहती थीं। उनकी भावभूमि आधुनिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण थी। आज के भूमंडलीकरण के जमाने में लोगों की प्रवृत्ति भोगवादी हो गयी है। समाज की विशृंखलता का यह सबसे बड़ा कारण ठहरा है। इससे आम लोगों को शोषण, उत्पीड़न का सामना करना पड़ रहा है, नारी को यंत्रणाओं का शिकार होना पड़ रहा है। अपने को बचाने के लिए उन्हें कदम उठाना पड़ेगा। ताकि अमृता प्रीतम और मामणि रयछम गोस्वामी उनके सामने उदाहरण बन सकें, इसलिए उनकी आत्मजीवनी का अध्ययन करना अवश्य ही महत्वपूर्ण माना जायेगा।

अध्ययन की पद्धति :

अमृता प्रीतम की आत्मजीवनी 'रसीदी टिकट' और मामणि रयछम गोस्वामी की आत्मजीवनी 'आधा लेखा दस्ताबेज' के विवेचन में ही इस शोध-पत्र की परिधि तय की गयी है । 'रसीदी टिकट' और 'आधा लेखा दस्ताबेज' के तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय वर्णनात्मक पद्धति के साथ-साथ विश्लेषणात्मक पद्धति अपनायी गयी है। इसमें तुलनात्मक पद्धति को भी अपनाया गया है । असमीया उद्धरणों के लिप्यंतरण में असमीया 'य' के लिए हिन्दी में भी 'य' रखा गया है। असमीया 'य' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिप्यंतरण में 'य़' रखा गया है। बाकी वर्णों का लिप्यंतरण हु-ब-हु रूप में किया गया है।

विश्लेषण :

अमृता प्रीतम (1919-2005) और मामणि रयछम गोस्वामी (1942-2011) ने अपनी आत्मकथाओं में जीवन के कई महत्वपूर्ण घटनाओं का खुलासा किया है। उनकी आत्मकथाओं क्रमश: 'रसीदी टिकट' (1988) और 'आधा लेखा दस्ताबेज' (=आधा लिखा हुआ दस्तावेज़;1988) में जीवन की कई अनकही पहलुओं का अनावरण किया है। संवेदना एवं अभिव्यंजना पक्षों की विशेषता के कारण दोनों रचनाओं को पाठकों से समादर मिला ।

'रसीदी टिकट': अमृता प्रीतम के जीवन का खुला दस्तावेज़ :

सन् 1976 में प्रकाशित अमृता प्रीतम की आत्मजीवनी 'रसीदी टिकट' में उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं का इमानदारी के साथ निर्भीक रूप में प्रस्तुत किया है। बताया जा चुका है कि उनके इसी ग्रंथ का हिंदी संस्करण सन् 1988 में प्रकाशित हुआ। उल्लेखनीय है कि पंजाबी 'रसीदी टिकट' के अंतर्गत उनसठ खंडों के विपरीत हिंदी 'रसीदी टिकट' में तैंतालीस खंड हैं। इन तैंतालीस

खंडों में उन्होंने अपने वंश परिचय के बाद उनके जन्म से लेकर ज्ञानपीठ मिलने का अनुभव, फिर इंदिरा गांधी की हत्या तक पैंसठ साल की कथा को समेट लिया है। बाह्यिक दृष्टि से 'रसीदी टिकट' का हिंदी संस्करण पंजाबी संस्करण से कमजोर सा लगने पर भी गौर से निरीक्षण करने से पता चलता है कि हिंदी संस्करण पंजाबी संस्करण का ही कायाकल्प है। खुद अमृता द्वारा किया गया हिंदी संस्करण में लेखिका ने स्पष्ट शब्दों में कहा है -

> 'रसीदी टिकट' के चिंतन में कोई कमी नहीं आई। बल्कि कई और बातें, जो स्मरण हो आईं। उनके साथ साथ चल दी हैं। (प्रीतम 2021:आमुख)

पहले के कुछ खंडों में लेखिका ने अपना वंश परिचय, जन्म, पिता का व्यक्तित्व, उनकी किशोरावस्था, विवाह तथा प्रेम का प्रसंग खींचा है। बचपन से ही अमृता एक धार्मिक दुनिया में पली-बढ़ी थीं। उनके पिता धार्मिक और इमानदान पुरुष थे। इसलिए उन्होंने अपनी इकलौती संतान को धर्म तथा सच्चाई की शिक्षा दी थी। रोज विस्तर में जाने से पहले उन्हें 'कीर्तन सहेला' प्रार्थना करनी पड़ती थी। बचपन में हर बच्चा सपनों की दुनिया में डुबकी लगाता फिरता है। अमृता भी इससे भिन्न नहीं थीं। इसलिए वे पिता द्वारा बनाये गये उस महल को तोडऩा चाहती थीं। निसंग दुनिया से बाहर आकर अपने मन की भावनाओं में डुबकी लगाने के उद्देश्य से वे स्वप्न नायक राजन का ध्यान किया करती थीं। राजन उनके सपने में आया करता था और उनकी हर बात मानता था।

किशोरावस्था में ही उन्हें माँ को खोना पड़ा था। एक लम्बे समय तक बीमार रहने के उपरांत उनकी माँ बेहोशी की अवस्था में विस्तर पर लेटी रहती थीं। उनकी माँ की सहेली प्रीतम कौर ने उन्हें माँ के पास बुलाकर कहा -

> तू ईश्वर का नाम ले, री! कौन जाने उसके मन में दया आ जाए। बच्चों का कहा वह नहीं टालता।(प्रीतम 2021:13)

माँ अच्छी हो जायेंगी इसी आशा से वे भगवान की प्रार्थना करने लगीं। उनके कोमल मन को यह विश्वास हो गया था कि प्रार्थना की गयी है, तो भगवान अवश्य ही माँ को सही-सलामत रखेगा। सन् 1930 के 31 जुलाई को माँ राजबीबी इस दुनिया को छोड़कर चली गयीं। तब वे ग्यारह वर्ष की थीं। उनका कोमल हृदय काँच के वर्तन की भाँति टूट चुका था। भगवान पर उनका भरोसा खत्म हो चुका था। इसलिए इतने वर्षों से पालन करती आयी ध्यान-प्रार्थना उन्होंने छोड़ दी थी। ऐसे ही

उनका शिशु मन भगवान का विरोधी हो गया। पिता द्वारा जबर्दस्ती ध्यान कराये जाने पर उनका मन इधर-उधर घूमता-फिरता था।

जीवन प्रवाह में सभी के जीवन में यौवन आता है। अमृता के जीवन में एक 'अजनबी' की तरह यौवन आता है। अमृता ने यौवन के आने को अजनबी इसलिए कहा कि उनके सामने इस युवावस्था को जीने के रास्ते में बहुत सारी दीवारें खड़ी थीं। उनकी देख-रेख के लिए घर में पिता के अलावा और कोई नहीं था। माँ की गैरहाजिरी में आस-पास के अच्छे-बुरे प्रभावों से बचने के लिए उनके पिता को इसमें ही सुरक्षा समझ में आथी थी कि अमृता का कोई परिचित न हो, न स्कूल की कोई लडक़ी, न पड़ोस का कोई लडक़ा। इस एकाकी हालात में अमृता कविता लिखकर समय व्यतीत करने लगीं। घर के समस्त बंधन और उन पर आरोपित नीति-नियमों ने उनके विद्रोही मन को अधिक विद्रोही बना दिया था। मन की गहराई में स्थित इसी विद्रोह-भावना की बाह्य अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कविता को साधन के रूप में अपना लिया था।

सन् 1947 का समय देश विभाजन का भयानक समय था। उन्हें लाहौर से पंजाब आना पड़ा। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक मूल्य चकनाचूर हो गये थे। चारों ओर हत्या, हिंसा और बलात्कार का दबदबा चल रहा था। खून की नदियाँ बहने लगी थीं। लोगों के भरोसा का खून, माँ के मातृत्व का खून, किसी बलात्कार के शिकार महिला के आत्मसम्मान का खून होते उन्होंने देखा था। उन खून के धब्बों को उन्होंने अपनी कलम में स्याही के तौर पर इस्तेमाल किया था। ऐसे वातावरण से ऊब चुकी अमृता के दिमाग में पाकिस्तान के प्रसिद्ध कवि वारिस शाह की कविता 'भला मोए ते बिछड़े कैन मेले' (जो मर चुके हैं, जो बिछुर चुके हैं, उनसे कौन मिलान कराए) चक्कर काटने लगी। उन्होंने कहा-

> और मुझे लगा कि वारिस शाह इनता बड़ा कवि था कि हीर के दु:ख को गा सका। आज पंजाब की एक बेटी नहीं, लाखों बेटियाँ रो रही हैं, आज इनके दु:ख कौन गायेगा? और वारिस शाह के सिवाय और कोई ऐसा नहीं लगा, जिसे संबोधित करके मैं यह बात करती। (प्रीतम 2021:24)

उसी रात देहरादून से दिल्ली की यात्रा के दौरान चलती हुई गाड़ी में हिलती और काँपती कलम से उन्होंने 'अज्ज आक्खाँ वारिस शाह नूँ' कविता लिख डाली।वे जितनी ही बड़ी हो चली थीं, उनके मन की दहलीज पर ढेर सारे सवाल झुंड बनाकर खड़े हो गये थे। उनके सामने जितनी

सामाजिक चुनौतियाँ थीं, उन्हें वे तोडक़र फेंक देना चाहती थीं। उनके मन में नयी नयी जिज्ञासाएँ पनपने लगी थीं। साथ ही अनेक सवालों ने उन्हें घेर लिया, जिसके कारण उनका मन विद्रोही हो गया था।

प्रेम नामक स्वर्गीय अनुभूति उनके मन में तभी आयी, जब उनके जीवन में साहिर का आगमन हुआ था। उस समय अमृता को चाहनेवालों की संख्या अनेक थी। अनेक लोग उनके सौंदर्य की पूजा करते थे। पंजाब के प्रसिद्ध कवि मोहन सिंह भी उनमें शामिल थे। अमृता उनकी कविता का विषय बन गयी थी। स्थिति ऐसी हो गयी थी कि अमृता को यह स्पष्ट करना पड़ा कि वे उनके दोस्त के सिवा और कुछ नहीं है। सन् 1947 में अमृता के बेटे का जन्म हुआ, जिसकी सूरत साहिर जैसी थी। होनेवाली माँ के कमरे में जिसतरह की तस्वीरें हों या जिस रूप की कल्पना वह मन में करती हों, बच्चे की सूरत वैसे ही हो जाती है। अमृता की कल्पना की दुनिया में धीरे से साहिर प्रवेश कर चुका था।

अमृता की शादी बहुत कम उम्र में ही हो गयी थी। बाल्यवस्था में ही उनका विवाह तय हो चुका था। सिर्फ सोलह साल की उम्र में पाकिस्तान के व्यवसायी प्रीतम सिंह के साथ उनकी शादी करायी जाती है। प्रसिद्ध व्यवसायी जगत सिंह अमृता के ससुर थे। यह विवाह लम्बे समय तक नहीं टिक सका और सन् 1960 में उनकी शादी टूट गयी।

साहिर अमृता से मिलने लाहौर से आता था। वह सिगरेट पीता था और आधी सिगरेट पीकर राखदानी में बुझा देता था, फिर नयी सिगरेट सुलगा लेता था। अमृता उसके हाथ को छूना चाहती थीं; पर उनके सामने संस्कारों की दूरी थी। उसके जाने के बाद केवल सिगरेटों के बड़े-बड़े टुकड़े कमरे में रह जाते थे। अमृता एक-एक टुकड़े को अकेले में बैठकर जलाती थीं। उंगलियों के बीच सिगरेट के टुकड़े उन्हें ऐसे लगते थे कि मानो उसका हाथ छू रही हैं।

सन् 1960 में साहिर को जिंदगी की एक नयी मोहब्बत मिल गयी थी। यह वर्ष अमृता की जिंदगी का सबसे उदास वर्ष था। उन्होंने तय कर लिया कि इसी उदासी को उन्हें शाही पोशाक बनाकर पहनना है।

अमृता के भीतर की औरत सदा उनके भीतर के लेखक से दूसरे स्थान पर रही हैं। उन्हें पहली बार के लिए औरत होने का एहसास हुआ था, जब वह पचीस वर्ष की थी। उनका कोई बच्चा नहीं था और सपने में प्राय: एक बच्चा आया करता था। औरत होने का दूसरा एहसास उन्हें तब हुआ

था, जब एक दिन साहिर आया था, तो उसे हल्का सा बुखार चढ़ा था। उसके गले में दर्द था, साँस खिंचा-खिंचा था। उस दिन उसके गले और छाती पर अमृता ने 'विक्स' मली थी। और तीसरी बार उन्होंने सिर्फ औरत होने का एहसास किया था, जब अपने स्टूडिओ में बैठे हुए इमरोज ने अपना पतला सा ब्रुश अपने कागज के ऊपर से उठाकर उसे एक बार लाल रंग में डुबोया था और फिर उठकर उस ब्रुश से अमृता के माथे पर बिंदी लगा दी थी।

अमृता को डायरी लिखने की आदत नहीं थी; पर सफर के समय अवश्य लिखती थीं। 'रसीदी टिकट' के 'सफर की डायरी' के अंतर्गत उन्होंने सन् 1966 से 1972 तक विदेश के अनेक स्थानों की यात्रा में प्राप्त अनुभूतियों का चित्रांकन किया है। अपने वैवाहिक जीवन के अंत में इमरोज के साथ प्रेम-प्रसंग में उन्होंने लिखा है-

> फिर कई बरस गुजर गये, जब मैं और इमरोज बम्बई में रहते थे। उस समय सारा समाज मुझसे रुठा हुआ था। (प्रीतम 2021:49)

उनके लोकप्रिय उपन्यास 'पिंजर' के कई पन्ने उनके सांसारिक जीवन की जटिलताएँ, साहित्यिक जीवन की चुनोंतियों के कथा-प्रसंग से भरे पड़े हैं। उन्होंने अपने उपन्यास-सृष्टि की पृष्ठभूमि का खुलासा किया है। यथार्थ की नींव पर सृष्ट 'इक सी अनीता', 'एकता ते एरियल', 'यात्री', 'जेबकतरे', 'अग दा बूटा' आदि उपन्यासों के चरित्र-चित्रण से संबंधित कुछ प्रसंगों का उल्लेख किया है। साथ ही जीवन में इमरोज के साथ बीते कुछ रंगीन पलों का भी उल्लेख उन्होंने किया है।'ककनूसी नस्ल' में फिनिक्स तथा फिनिक्स के लोगों के बारे में चर्चा की गयी है। इसमें डायरे के कुछ टूकरे भी शामिल हैं, जहाँ उनके विवाह, इंडिरा गांधी के साथ उनके मधुर संपर्क तथा अपने दो बच्चों का भी जिक्र किया गया है।

'1983', '1984', '1986', 'यात्रा', '1990' आदि से गुजरती हुई 'एक खबर' शीर्षक के अंतर्गत लेखिका ने क्रमश: उनके 'कागज ते केनवस' के कारण 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' मिलना, इंदिरा गांधी की हत्या, उनके सपने तथा इंदिरा गांधी के उनके नाम पर पत्रों के बारे में उल्लेख किया है। 'क्या यह कयामत का दिन है?' शीर्षक से आरंभ कर 'रसीदी टिकट' की समाप्ति 'इतिहास और पुराण' शीर्षक से की गयी है। ओशो के इतिहास और पुराण के प्रसंग में अमृता का कहना था, ''इतिहास में आत्मा नहीं होती। इसलिए उन्होंने इतिहास नहीं; बल्कि पुराण लिखा है। बात

'सारतत्व' की है, तो उन्होंने बहुत के नाम-धाम छोड़ दिये हैं। कृष्ण ने जिस तरह से वासनामय पूजा-पाठ से ऊपर जाने की बात कही थी, इमरोज ने भी जिंदगी के स्वीकार के साथ कहा था-

> अमृता, तूने इस उदासी के पार जाना है। जो होता है होने दे। कत्ल भी होना है तो होने दे, मैं तेरे साथ हूँ...। (प्रीतम 2021:139)

उन्होंने जीवन के प्राय: सभी घटनाओं के बारे में 'रसीदी टिकट' में उल्लेख किया है। अगर इमरोज न होता, तो 'रसीदी टिकट' की सृष्टि न होती।'रसीदी टिकट' के आंतरिक पक्ष पर दृष्टि दौड़ाने से पता चलता है कि प्रेम प्राथमिक क्रांति है। स्वतंत्र व्यक्ति ही सच्चा प्रेम कर सकता है। साहिर से उनका प्रेम खामोशियों के इर्द गिर्द पनपता रहा। जिससे एक बार प्रेम हो जाता है, वह जीवन भर नहीं छूटता। अतीत की स्मृतियों से वह कभी रिक्त नहीं हो पाता। प्रेम की मृत्यु वस्तुत: आंशिक मृत्यु है। हर बार प्रेम के मरने पर जिंदगी का एक हिस्सा भी हमेशा के लिए मर जाता है।

अमृता प्रेम करती रहीं और मुक्त भी रहीं। सच्चा प्रेम कभी बांधता नहीं है। वे प्रेम में और स्वतंत्र होती गईं। जब उन्हें इमरोज से इश्क हुआ तो वे कई वर्ष उनके साथ रहीं। जीवन की धूप-छाव में दोनों एक दूसरे का हाथ थामे रहें। एक दूसरे पर कुछ थोपे बिना सदा साथ रहें। 'रसीदी टिकट' का हर पन्ना यह बयान करता है कि कैसे अमृता ने बंधनों के बीच रहकर बधनों का सशक्त विरोध किया। अन्याय और असमानताओं के खिलाफ वे बोलती-लिखती रहीं। एक माँ, एक प्रेमिका और एक लेखिका होने के बीच उलझती रहीं और निकलने का राह बनाती रहीं। उनके लिए जीवन यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने का सफर रहा। एक कभी न मिटनेवाली छाया तमाम उम्र तक कंकड़ों पर चलीं, लेकिन लौटी नहीं।

अभिव्यंजना शैली :

'रसीदी टिकट' का पढ़ना दरअसल एक नशे में डुबे रहना, जिससे पाठक को नायिका के जीवन की हर सच्चाई का परिचय हो जाता है। नशा के बगैर उन तक पहुँचना नामुमकिन है। लेखिका की अभिव्यक्ति शैली को देखकर इसे एक आत्म-कोलाज कहा जा सकता है, जहाँ डायरी, संस्मरण, कविता, सपना और जिंदगी के कड़वे यथार्थ घूलमिल गये हैं। यहाँ यात्राओं के भीतर

अनेक अंतर्यात्रायें निहित हैं। भावानुकूल भाषा, वार्तालाप, छोटे-छोटे वाक्य प्रयोग, अंग्रेजी तथा अरबी-फरसी शब्दों का व्यवहार, इतिहास का स्मरण, प्रश्नोत्तर आदि ने 'रसीदी टिकट' में चार चांद लगा दिये हैं। कई जगहों पर सपने के जरिए पूर्वानुमान मिलने का परिचय भी ग्रंथ में उपलब्ध है।

'आधालेखा दस्ताबेज' : मामणि रयछम के जीवन का आईना :

आधुनिक जीवन में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ होती हैं और पर उन जिज्ञासाओं का अंत कभी नहीं होता। मामणि की इस अनंत जीवन-जिज्ञासा का प्रतिबिम्ब है 'आधा लेखा दस्ताबेज'। 'आधा लेखा दस्ताबेज' में चित्रित यात्राओं के भीतर की अंतर्यात्राओं में प्रवेश करने से पता चलता है कि साधना और सौभाग्य ने मामणि रयछम गोस्वामी को धन्य कर दिया है। सुख-दु:ख तथा प्राप्ति-अप्राप्ति की भूमि पर उन्होंने आधुनिक मानव की खोज की है। बाद में मामणि ने 'दस्ताबेजर नतुन पृष्ठा' (दस्तावेज़ के नये पृष्ठ) शीर्षक से कुछ जीवनानुभवों का प्रकाशन किया ।

'आधा लेखा दस्ताबेज' में लेखिका की व्यक्तिगत जीवन-कहानी का खुले आम चित्रण किया गया है। उन्होंने इसकी रचना उपन्यास की शैली में की है। आत्मजीवनी की कथा को लेखिका ने तीन भागों में बाँटा है। पहले भाग में चार अध्याय, दूसरे भाग में दो अध्याय और तीसरे भाग में चार अध्यायों में समाप्त इस आत्मजीवनी में लेखिका के जीवन में घटित प्रसंगों का विवरण मिलता है। उन्होंने अपने अत्यंत संघर्षपूर्ण जीवन को केंद्र में रखकर इसकी रचना की है। इसलिए यह ग्रंथ मानवीय दलील के रूप में पाठकों के बीच लोकप्रिय बना।

मामणि रयछम गोस्वामी के 'आधा लेखा दस्ताबेज ' में उनके प्राथमिक स्कूल में पढ़ने से लेकर दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर नियोजित होने तक की कथा का विश्लेषण मिलता है। मामणि रयछम गोस्वामी के पिता उमाकांत गोस्वामी बड़े ही धार्मिक और इमानदार व्यक्ति थे। पाँच साल की उम्र में मामणि अपने बड़े भाई के साथ गुवाहाटी के 'लताशिल प्राथमिक विद्यालय' में पढ़ती उन गरीब विद्यार्थियों में से एक उनका प्रेमिक भी था, जिसकी नाक से हरदम गंगा-यमुना बहती रहती थी। फिर मामणि अपने बड़े भाई के साथ गाँव के झोपड़ीवाले स्कूल में जाती हैं । पिता

का कर्मस्थान शिलांग होने के कारण सन् 1955 में उन्हें वहाँ के 'पाइन माउंट स्कूल' में दाखिल कर दिया गया। उसी वर्ष उनके पिता की मृत्यु होने पर मामणि के कोमल मन में नैराश्य ने घर कर लिया था, जिसके कारण वे आत्महत्या की बात सोचने लगी थीं। पिता की मृत्यु के पश्चात एक बार परीक्षा में खराब परिणाम आने पर वे मानसिक रूप से टूट चुकी थीं। उन्होंने आत्महत्या की कोशिश तो की, पर जैसे-तैसे बच गयी। इससे उन्हें लोगों का भला-बुरा सुनना पड़ा था-

> तेओँ अन्त:सत्वा आछिल छागै। कारोबार लगत किबा गण्डुगोल हैछिल निश्चय, नहलेनो कोनोबाइ आत्महया करिबलै चेष्टा करबने? (गोस्वामी 2001:14)

अर्थात, शायद वह गर्भावस्था में थी। किसी के साथ कुछ गड़बड़ हुआ होगा। नहीं तो कोई लडक़ी थोड़े न आत्महनन की कोशिश करती।

मामणि की माँ अपनी पुत्री के भविष्य को लेकर चिन्तित थीं। इसलिए वे खुद अपनी लडक़ी का प्रस्ताव लेकर किसी योग्य वर के घर जाती थीं; पर एक आत्महत्या की कोशिश करनेवाली लडक़ी को विवाह करने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। विवश होकर वे अपनी बेटी को ज्योतिष-शास्त्री के पास ले गयी थीं। एकबार नवग्रह मंदिर के किसी ज्योतिष-शास्त्री ने कहा था-

> एइजनी छोवाली बिया दियातकै दुटुकुरा करि काटि नदीत भहाइ दियाइ भाल हब। (गोस्वामी 2001:18)

अर्थात, इस लडक़ी की शादी कराने से अच्छा है कि इसके टुकड़े करके नदीं में बहा दिया जाय।

पर इसी ज्योतिषी ने बाद में मामणि को आशीर्वाद दिया था-

> तुमि इच्छा करिले पाहार बगाब पारिबा। तोमार माजत मइ अध्यावसायर ज्योति देखा पाइछो। (गोस्वामी 2001:18)

अर्थात, चाहने से तुम पहाड़ लांघ सकोगी। तुम्हारे बीच मैंने अध्यावसाय की ज्योति देखी हैं।

उनके ऐसे प्रोत्साहन से मामणि को साहित्य जगत में अपने को डुबाये रखने की प्रेरणा मिली थी। साहित्य चर्चा से ही उन्होंने अपने मन के भारीपन को हल्का करने की कोशिश की थी।

सन् 1962 में हिन्दुस्तान कॉनस्ट्राक्शन कम्पनी की तरफ से ब्रह्मपुत्र पर शराइघाट पुल के निर्माण करने के लिए मसूरी से माधवेन रयछम आयेंगार नामक एक अभियंता गुवाहाटी आये थे। मामणि के घर के सामने के किसी मकान में माधवेन रहा करते थे। आते-जाते समय दोनों की मुलाकात होती रहती थी। इसी बीच एक दिन मामणि अपने परिवार सहित माधवेन रयछम के साथ पिकनिक मनाने के उद्देश्य से सोनापुर गयी थीं। वहाँ मामणि को पता चलता है कि सामने के मकान में रहकर माधवेन मामणि को हृदय की गहराई से देखते रहते हैं । माधवेन ने मामणि की माँ के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा । पर मामणि की माँ ने उसे सख्त मना कर दिया। ममणि के विवाह को लेकर माँ बहुत चिंतित थीं। माँ के व्यवहार से तंग आकर मामणि ने एक दिन विदेश से आये हुए दूसरे वर्ण के प्रेमिक के साथ वकील के सामने विवाह पंजीयन पत्र में दस्तखत किया। बाद में यह बात खुल गयी। माँ के बारे में चिन्ता हुई तो वे पछताने लगीं। तत्पश्चात शुभचिंतकों के साथ न्यायालय में जाकर वे मजिस्ट्रेट के सामने विवाह विच्छेद करती हैं।

सन् 1965 के अक्टूबर महीने में माधवेन के साथ मामणि का विवाह होता है। शादी के बाद माधवेन के साथ वह गुजरात के कच्छ में रण रेगिस्तान के कोंवर वेद नामक स्थान में गयी। माधवेन के साथ वर्कसाइट में घूमते वक्त मामणि को लगा कि वे पहली बार के लिए उन निर्मम एवं उदास भावना से स्वतंत्र हो चुकी हैं। पर वहाँ श्रमिकों की दु:ख-यातनाओं से मामणि का मन भारी हो गया था।

सन् 1966 के अक्टूबर महीने में कम्पनी के निर्देशानुसार वे चंद्रभागा से कश्मीर की तवी नदीं के तट पहुँचते हैं। यहीं पर बटालियन अधिकारी मेजर सिंह से उनकी भेंट होती है। उनसे मिलने पर लेखिका यद्यपि थोड़ी सी उत्तेजित हुई थीं; पर उनके हृदय में माधु (माधवेन) इस तरह से छा गया था कि मेजर सिंह वहाँ ठहर नहीं पाया।सन् 1967 के जनवरी में वे माधवेन के पूर्वजों के स्थान बैंगलोर के मालेश्वरम चले गये थे। इस साल मार्च के महीने में वे फिर कश्मीर आये। वहाँ के एकुएडॉक्ट बननेवाली जगह तक पहुँचने का रास्ता अत्यंत ही खतरनाक था। रास्ते की दाहिनी ओर बहुत नीचे से तेज गति से बहनेवाली नदी थी और रास्ते के किनारे पेड़ नहीं था। माधवेन को उसी रास्ते से आना-जाना पड़ता था। एक दिन माधवेन की गाड़ी रास्ते से गहराई में गिर जाने से उनकी मृत्यु हो जाती है। प्राय: अठारह महीने एक साथ सुख-दु:ख के समभागी रहने के पश्चात माधवेन को

खोकर मामणि का जीवन बिल्कुल गतिहीन हो गया। उनके साथ रचे गये सारे सपने, आशा-आकांक्षाओं में पानी फिर गया था। वैधव्य और निसंग जीवन से वे ऊब चुकी थीं । एक बार अमृता प्रीतम से भेंट होने पर उन्होंने अमृता से सवाल किया था कि मामणि का जीवन अगर उन्हें मिले तो क्या करेंगी? एक सिगरेट जलाकर अमृता ने जवाब दिया था कि

> सुखी होने या न होने के बारे में अमृता को कुछ नहीं पता। पर उनके हाथों में कलम का होना जरूरी है। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा ।(गोस्वामी 2001:69)

माधवेन की मृत्यु के बाद उन्हें ग्वालपारा के सैनिक स्कूल में नौकरी मिलीं। वहाँ वे जुनियर विंग के छोटे सैनिकों के छात्रावास में किनारेवाले कमरे में रहती थीं। इसी बीच उनके जीवन में और कई पुरुषों का आगमन हुआ था। ग्वालपारा सैनिक स्कूल के अध्यापक सिंह साहब भी उनके जीवन को नये रूप से सजाना चाहते थे। ग्वालपारा में रहते वक्त रामबांध ब्रीज के मुख्य अभियंता काइकाउच बार्जोर सातारवाल, कश्मीर में जिनसे मामणि की मुलाकात हुई थी, मामणि को जीवन साथी के रूप में पाने के उद्देश्य से मामणि की खोज में ग्वालपारा आये थे। पर मामणि ने उनके प्रस्ताव का ग्रहण नहीं किया। माधवेन की याद में उनके मन में फिर से आत्महत्या का भाव उत्पन्न होने लगा था।

इतने में उन्हें अपने गुरु उपेंद्र चंद्र लेखारु के अधीन वृन्दावन में शोध कार्य करने के बारे में लिखा हुआ एक पत्र मिला। सैनिक स्कूल छोड़ने को वे तैयार तो थीं; पर धर्म की नगरी वृंदावन में रह पायेंगी या नहीं, इसके बारे चिन्तित थीं । डर, संशय और अनिश्ययता ने उन्हें बुरी तरह से घेर लिया था। पर अंत में सभी मानसिक अंतर्द्वद्वों को किनारे पर फेंककर सन् 1961 के अगस्त महीने में वे वृंदावन पहुँचीं। मुरलीघर की नगरी के उस छोटे से काठ से बने छोटे से अंधकार कमरे में प्रवेश करते ही उन्हें लगा था कि वे वहाँ नहीं रह पायेंगी। वृन्दावन की विधवाओं की पीड़ा माधवेन की मृत्यु की पीड़ा से भी गहरी थी। पर गुरु लेखारु और उनकी पत्नी के प्रेम में वशीभूत होकर 'इंटिट्यूट ऑफ अरियंटल फिलॉसफी' में शोध के कार्य में वे इस तरह से नियोजित हो गयी थीं कि वापस आने का भाव बिल्कुल मिट गया था।

वृंदावन की सारी बातें उनके लिए धीरे-धीरे आसान सी लगने लगीं। वृंदावन की राधेश्यामी, उनके गुरु लेखारु देव, गुरु पत्नी अर्थात मौसी के साथ देवरीया सन्यासी, मौन सन्यासी के दर्शन का अनुभव, कच्छ के रण मरुभूमि में रहने से लेखक सपने से यथार्थ तक का अलौकिक परिवर्तन, सहेली मणि गौतम के भाई के प्रति लेखिका का लगाव, लीला बाबा की भेंट, राधेश्यामियों का जीवन युद्ध, ग्वाला सांप से प्रति आत्मीयता, ब्रज के वणिक हिन कुमार गुप्ता का मामणि के प्रति आकर्षण, सहली मनु के दु:ख तथा गरीबी जैसे अनेक अनुभवों के प्रकाशन 'आधा लेखा दस्ताबेज' के भिन्न-भिन्न प्रसंगों में दिखाई पड़ते हैं। मामणि के वृंदावन में अनेक साधु सन्यासियों का संग प्राप्त हुआ था। मामणि को लगा था कि वे जिस रास्ता का निर्देशन करेंगे, वही सच्चा रास्ता होगा। मामणि ने गुरु लेखारु के सामने मन की पीड़ा को खुले आम व्यक्त किया था। गुरु के निर्देशानुसार वे इंटरव्यू देने के लिए 'दिल्ली विश्वविद्यालय' गयी थीं।

सन् 1970 के 2 नवम्बर को मामणि को दिल्ली विश्वविद्यालय में 'आधुनिक भारतीय भाषा-साहित्य अध्ययन विभाग' में प्राध्यापिका पद पर नियुक्ति मिली। दिल्ली में रहते समय उन्हें कई बार सातारवाल के पास जाना पड़ा। सातरवाल ने माधवेन की मृत्यु के बाद मिलनेवाले पी.एफ. या अन्य कामों में मामणि की मदद की थी। धीरे-धीरे दोनों के बीच आकर्षण का भाव पनपने लगा था। मामणि ने ग्रंथ में उनके साथ दिल्ली में रहने के प्रसंग का स्पष्ट उल्लेख किया। मामणि ने स्वीकार किया है कि गुरु लेखारु उनके साथ छाया की तरह लगे हुए थे। उनकी मृत्यु पर मामणि ने एक पितृतुल्य पथ प्रदर्शक को खोया, जिन्होंने मामणि को मानवीयता का मूलमंत्र सिखाया था।

हर किसी विवेकसम्पन्न व्यक्ति का एक विद्रोही मन होता है। आत्मद्वंद्व की तीव्रता से विद्रोह उत्पन्न होता है। फिर आत्मद्वंद्व का अंकुर तब फूटता है, जब दो भिन्न प्रकृति के बिन्दुओं का टकराहट होता है। अर्थात विद्रोह चरित्र के मानसिकता की चरम परिणति होती है। तत्पश्चात विरोधी सत्ता कदम बढ़ाता है। 'आधा लेखा दस्ताबेज' में एक ओर यद्यपि नायिका के जीवन संग्राम का निर्मम चित्रण हुआ है, दूसरी ओर अनंत जिज्ञासा का अतृप्त चित्रण का भी प्रकाशन हुआ है। नायिका की यह अतृप्त आत्मिक भूख आधुनिक मानव की है। नायिका मानव का कल्याण चाहती थीं, मानव का विकास चाहती थीं। वे जिस रास्ते से भी आगे बढ़तीं, सामने बड़ी बड़ी दीवारें खड़ी होती गयीं; पर

वे हार माननेवाली नहीं थीं। उन्होंने अतृप्त होकर भी खोज जारी रखी। यह भी आधुनिक जीवन की मांग है। 'आधा लेखा दस्ताबेज' के जरिए प्रतिफलित पक्षों में से यह भी प्रमुख है। आदमी अतृप्त हो सकता है, अतृप्ति के अनेक पक्ष हो सकते हैं, पर यह किसी के रास्ते में दीवार खड़ा नहीं कर सकता और न ही किसी को ध्वंस कर सकता है।

अभिव्यंजना शैली :

पाठक किसी भी लेखक के सृष्टि कर्म की प्रेरणा स्रोत होता है। आम तौर पर देखा जाता है कि उपन्यास में पाठक का हृदय ज्यादा रमता है। यही कारण है कि मामणि रयछम गोस्वामी ने 'आधा लेखा दस्ताबेज' में उपन्यास शैली का प्रयोग किया है। एक शृंखलित कथा-प्रवाह के जरिए पाठक के मन में जिज्ञासा पैदा करते हुए उन्हें अंत तक पहुँचा पाने से इसे आत्मजीवनी न कहकर आत्मजीवनीमूलक उपन्यास कहा जाना ही सटीक लगता है। आवश्यकतानुसार उद्धरण, प्रश्नोंत्तर वार्तालाप के प्रयोग आदि ने ग्रंथ की सफलता में चार चांद लगा दिये हैं। आत्मकथा में उपमा का भरमार प्रयोग हुआ है। पाठक के मन में जिज्ञासा बनाये रखने में समर्थ होना ग्रंथ की लोकप्रियता का अन्यतम कारण है। 'आधा लेखा दस्ताबेज' शीर्षक से ही पाठक आकर्षित होते दिखाई पड़ते हैं। छोटे छोटे वाक्य के प्रयोग से पाठक के पठन-प्रवाह में तीव्रता दिखाई पड़ती है। बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से वर्तमान समाज में लोगों के मुँह में आम-तौर पर प्रचलित भाषा का परिचय मिलता है। इतिहास के स्मरण से किसी रुखे विषय को सहज तरीके से पाठकों तक पहुँचा देना उनकी कलात्मकता का परिचायक है।

तुलनात्मक विश्लेषण :

'रसीदी टिकट' और 'आधा लेखा दस्ताबेज' दोनों आत्मजीवनियाँ निर्भीकता के परिचायक हैं। दोनों में प्रेम प्रसंग फल्गू धारा की तरह प्रवाहमान है। बंधन में रहकर दोनों साहित्यकार स्वाधीन रहीं। अमृता प्रीतम ने देश विभाजन की वेदनाएँ झेली थीं, इसलिए आत्मजीवनी में विभाजन के साथ-साथ देशप्रेम का भाव झलकता है। पर 'आधा लेखा दस्ताबेज' में ऐसा प्रसंग नहीं मिलता। दोनों रचनाओं में विद्रोह की भावना तथा मानवताबोध की ध्वनि गुंजित होती है। वे वर्ण-वैषम्य के विरोधी थे। दोनों रचनाओं में आधुनिक मानव की तलाश की यात्रा है। 'रसीदी टिकट' की अभिव्यंजना शैली अगर एक आत्म-कोलाज है, तो 'आधा लेखा दस्ताबेज' आत्मजीवनीमूलक

उपन्यास है। दोनों लेखिकाओं की भाषा जोशपूर्ण है। नारी मन की व्याकुलता प्रकट करने में की दोनों की भाषा एक जैसी बन जाती है।

'रसीदी टिकट' शीर्षक बहुचर्चित आत्मकथा यह बताती है कि अमृता प्रीतम नफरत के दायरे पर तरस आता है। अमृता प्रीतम को देश के बँटवारे ने बुरी तरह से प्रभावित किया था, जिससे 'वारिस शाह' जैसी कविता की रचना हुई। जीवन-संग्राम में लडऩा तो है ही, साथ ही जीतना भी। और जीतने के लिए युद्ध-नीति अपनी होनी चाहिए। यह आत्मकथा यह संदेश देती है कि रचनाकार को कैसे अपनी आलोचना की परवाह नहीं करनी चाहिए, चाहे जमाना बैरी हो जाए।

'आधा लेखा दस्ताबेज' में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि शोषितों की चुप्पी शोषकों का हौसला बढ़ता है। मामणि रयछम गोस्वामी की रचनाओं में मानवता के साथ प्रेम भी बहता चला है। पर वह प्रेम कायिक नहीं है। लेखिका ने अपनी आत्मजीवनी में स्वीकार किया है कि गुरु उपेंद्र नाथ लेखारु ने मामणि को मानवीय गुणों से सम्पन्न होने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने प्राय: सभी रचनाओं में मानव को मानव के रूप में स्थापित करने की कोशिश की है। निर्मम यथार्थ को देखकर, मानवीयता की अपमृत्यु पर उनका हृदय रो पड़ता है। वे चाहती हैं कि मानव मानव के साथ मानव के रूप में रहें।

नारी की काम-चेतना का उन्मुक्त अभिव्यक्ति दोनों लेखिकाओं ने खुले आम किया है। वार्तालाप का व्यवहार दोनों की लेखन शैली की विशेषता है। छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग से दोनों रचनाएँ पुष्ट हैं। आवश्यकतानुसार दोनों लेखिकाओं ने अलंकार का प्रयोग किया है। 'रसीदी टिकट' हो या 'आधा लेखा दस्ताबेज' दोनों में बीचों-बीच अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार पाया जाता है।

इतिहास का स्मरण दोनों रचनाओं में उपलब्ध है। दोनों ग्रंथों में प्रश्नोत्तर की आवृत्ति देखने को मिलती है। समाज जीवन का यथार्थ चित्रण दोनों ग्रंथों में हुआ है। 'आधा लेखा दस्ताबेज' की अपेक्षा 'रसीदी टिकट' में उपमा का प्रयोग कम हुआ है। मामणि रयछम गोस्वामी की आत्मजीवनी में प्रकृति-चित्रण यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है; पर अमृता प्रीतम की आत्मजीवनी में नहीं। 'रसीदी

टिकट' में अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है, पर 'आधा लेखा दस्ताबेज' में ऐसा नहीं हुआ है।

निष्कर्ष :

'रसीदी टिकट' और 'आधा लेखा दस्ताबेज' दोनों आत्मजीवनीयों से यह संदेश मिलता है कि सामने जितने भी दीवारें खड़ी न हो जाय, रास्ता निकाली जा ही सकती है, सिर्फ उसके लिए हिम्मत का होना अनिर्वाय है। अमृता प्रीतम ने यह साबित कर दिया है कि आत्मकथा दोबारा लिखी जा सकती है। इधर मामणि रयछम गोस्वामी ने 'आधालेखा दस्ताबेज' के द्वारा पाठकों के सामने एक उदाहरण खड़ा कर दिया कि मूल आत्मजीवनी के प्रकाशन के बाद रह गयी बातों को परिपूरक के रूप में बाद में जोड़ा जा सकता है। दोनों ग्रंथ आधुनिक विचार से पुष्ट हैं। अत: आज के परिप्रेक्ष में दोनों आत्मजीवनियों का पढ़ना अत्यंत ही प्रासंगिक जान पड़ता है।

ग्रंथ-सूची :

अधिकारी, शुकदेव,संपा.नारीबादी आरु असमीया उपन्यास.गुवाहाटी:सरस्वती डि.एन. प्रकाशन, 2015.

इमरोज.दस्ताबेज.प्रथम.दिल्ली:श्री प्रकाशन, 2019.

गगै, पुरंदर. शताधिक भारतीय नारी.गुवाहाटी: बनलता, 2017.

गगै, हृदयानंद. आधुनिकतार संधानत मामणि रयछम. द्वितीय. गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन,2001.

गोस्वामी, मामणि रयछम. आधा लेखा दस्ताबेज.गुवाहाटी:स्टूडेण्ट्स स्टोर, 2001.

---. मामरे धरा तरोवाल.गुवाहाटी:चंद्र प्रकाश, 1980.

ठाकुर.नगेन, संपा.एश बछरर असमीया उपन्यास.गुवाहाटी:ज्योति प्रकाशन, 2000.

नाथ, भनिता. मामणि रयछम गोस्वामीर उपन्यास : विचार-विश्लेषण.गुवाहाटी:पूर्वायण प्रकाशन, 2020.

प्रीतम अमृता. मेरे साक्षात्कार.नई दिल्ली:किताब घर प्रकाशन, 2013.

प्रीतम, अमृता. रसीदी टिकट.नई दिल्ली:किताब घर प्रकाशन, 2021.

बरदलै, सत्येंद्र मराण और निहारिका, संपा.मामणि रयछम गोस्वामीर उपन्यास आरु चुटिगल्पर पर्यालोचना.गुवाहाटी:पूर्वायन पब्लिकेशन, 2018.

बरुवा, शांतनु कौशिक,संपा.संक्षिप्त असमीया विश्वकोष.ज्योति प्रकाशन, 2002.

भराली, हेमंत कुमार.भाल पाओँ तोमाक मामणि.प्रथम.गुवाहाटी:बनलता, 2004.

भराली, हेमंत कुमार. मामणि रयछमर स्वप्न-दु:स्वप्नर डायेरी.चित्रलेखा पब्लिकेशन, 1998.

शर्मा, अंजलि.असमीया महिलार जीवन आरु कर्म. प्रथम. गुवाहाटी: बनलता, 2017.

शर्मा, गोविंद प्रसाद.नारीवादी आरु असमीया उपन्यास. गुवाहाटी: असम प्रकाशन परिषद, 2007.

हुछेइन, निकुमणि,संपा.मामणि रयछमर आभा आरु प्रतिभा.गुवाहाटी:चंद्र प्रकाश ,2008.

संपर्क-सूत्र:
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
डुमडुमा महाविद्यालय
तीनचुकीया, असम
ई-मेइल: baishyahiran@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 117-126

शंकरदेव पर आधारित उपन्यास 'धन्य नर तनु भाल': एक अवलोकन

✍ **यीशुरानी चाङमाइ**

शोध-सार :

'धन्य नर तनु भाल' असमीया साहित्य के उज्ज्वलतम नक्षत्र स्वरूप प्रसिद्ध साहित्यकार सैयद अब्दुल मालिक का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। वे केवल उपन्यासकार ही नहीं अपितु कहानी, कविता, नाटक, निबंध, हास्य-व्यंग्य एवं भ्रमण कहानी आदि लेखन में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अपनी लेखनी के द्वारा भाषा, दर्शन और समसामयिक जीवन के प्रति उनकी दृष्टि पाठक वर्ग को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। असमीया साहित्य जगत में शंकरदेव की जो विशिष्ट भूमिका रही है, वह कभी भी भुलायी नहीं जा सकती। शंकरदेव ने लगभग 80 से अधिक ग्रंथ लिखकर असम के जनमानस पर प्रभाव विस्तार किया था। उनकी प्रत्येक रचना व्यक्ति के अंत:स्थल तक प्रवाहित होती हुई मानस पटल पर भावों का उद्वेग करती है। आपकी लेखनी में कुछ ऐसी शक्ति एवं कुछ ऐसे तत्व निहित हैं, जिनसे पाठक वर्ग केवल आनंदित ही नहीं, अपितु भाव विभोर हो जाते हैं। पाठक अपने हृदय में गंभीर मानव प्रेम और नवीन चिंतन के हिलोरे उठते हैं। प्रायः 61 से भी अधिक उपन्यासों में मानव प्रेम का बीजवपन कर अपनी अलग पहचान बना ली है। विविधता की दृष्टि से उनके उपन्यास आपके प्रखर पांडित्य को दर्शाते हैं। उनका उपन्यास 'धन्य नर तनु भाल' एक जीवनीमूलक उपन्यास है, जिसका नायक हैं महापुरुष शंकरदेव। श्रीमंत शंकरदेव पर आधारित यह उपन्यास कई मायनों में विशेष है। इस उपन्यास में उनकी दार्शनिकता, आध्यात्मिकता व रहस्यात्मकता का सुंदर समन्वय हुआ है।

बीज शब्द: *उपन्यास, धन्य नर तनु भाल, जीवन-दर्शन*

प्रस्तावना :

असमीया साहित्यकार सैयद अब्दुल मालिक द्वारा लिखित जीवनीमूलक उपन्यास 'धन्य नर तनु भाल' महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के जीवन-दर्शन को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। बचपन से

लेकर मृत्यु तक शंकरदेव का सम्पूर्ण जीवन वृतांत का दस्तावेज प्रस्तुत करता हुआ यह उपन्यास लोगों के मन में मानव प्रेम के साथ भक्ति भाव की एक निरंतर धारा प्रवाहित कराता है। समाज में आजकल प्रायः निःशेष होनेवाली कुछ प्राचीन संपदाओं के बारें में भी उपन्यासकार इस उपन्यास में विस्तार से वर्णन करते हैं। एक महापुरुष को महापुरुष कहलाने योग्य बनाने वाले सभी प्रकार के तत्वों का सुंदर परिपाक इस उपन्यास में हुआ है। यह उपन्यास तत्कालीन समाज में ब्राह्मण और शूद्र के बीच संबंध और साथ ही राजा-महाराजाओं की प्रवृत्ति पर गंभीर आलोकपात करते हुए धर्म और संस्कृति जगत में शंकरदेव के आविर्भाव का सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार बहुत ही रोचक ढंग से शंकरदेव का बचपन हमारे समक्ष रखते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास रसपूर्ण है और इसे पढ़ते हुए पाठक कभी भी उबाऊपन महसूस नहीं करते। उपन्यासकार बीच-बीच में प्रकृति की सुंदरता की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं,जिससे हमारा मन भी उस सुंदरता में कल्पना को बुनने लग जाता है। तत्कालीन समय में प्रकृति की अपूर्व सुंदरता का वर्णन शंकरदेव तथा उनके साथियों के माध्यम से उपन्यासकार ने बहुत ही सुंदरता से प्रस्तुत किया है।

उपन्यासकार ने 'धन्य नर तनु भाल' में उन सभी कारणों पर भी प्रकाश डाला है, जिनके कारण शंकरदेव ने अपने समाज को विभिन्न प्राचीन परंपराओं से मुक्त कराने का प्रण लिया था। उनके जैसे विद्वान दुर्लभ हैं, जो स्वयं पढ़ने के दौरान शास्त्रों की जटिल बातें समाज के पिछड़ी श्रेणी तक पहुँचाते थे।

भारतीय भक्ति आंदोलन के समय उत्तर और दक्षिण भारत में धर्म और संस्कृति जगत में जिसप्रकार एक नया वातावरण और परिवेश का सृजन हो रहा था, असम में भी एक नये भावबोध समाज में पैदा होने लगा था। बाद में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के जरिए इसकी स्वीकृति नव वैष्णव धर्म के नाम से मिलती है। धार्मिक लोकगाथा जो पहले संस्कृत आदि कठिन भाषा में रची हुई थी, अब यह जनसाधारण की भाषा में रची जाने लगी। धर्मशास्त्र की जटिलता से साधारण जनता को मुक्त कराने के पक्ष में शंकरदेव का योगदान बहुमूल्य साबित हुआ। उनके माध्यम से ही भाषा की जटिलता, शास्त्रों के जटिल अर्थों का निराकरण हो पाया। इसके पश्चात शास्त्रों के गूढ़ अर्थ लोक-साहित्य, लोक- चिंता, लोक-संस्कृति और लोक-दर्शन में सरलता से समाहित होने लगे।

शंकरदेव के माता पिता बचपन में ही उन्हें छोड़कर स्वर्ग सिधारे। अपनी दादी के साथ उनका जीवन अत्यंत संघर्षपूर्ण रहा। अपनी बूढ़ी दादी खेरसुती जो शंकरदेव के पालन-पोषण में अपना कोई भी कसर नहीं छोड़ा। आज उनके त्याग व कष्ट से ही महापुरुष शंकरदेव जन-जन के हृदय में विराजमान हैं।

अध्ययन की पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। आधार ग्रंथ के अतिरिक्त एक सहायक ग्रंथ का उपयोग किया गया है। ग्रंथसूची तथा उद्धरणों की प्रस्तुति में एमएलए के छठे संस्करण को अपनाया गया है। प्रस्तुत पत्र में असमीया उद्धरणों के लिप्यंतरण में असमीया 'য' के लिए हिन्दी में भी 'य' रखा गया है। असमीया 'য' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिप्यंतरण में 'य़' रखा गया है। बाकी वर्णों का लिप्यंतरण हु-ब-हु रूप में किया गया है।

विश्लेषण एवं निर्वचन :

'धन्य नर तनु भाल' में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण किया गया है। तब समाज का ढाँचा लोगों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करता था। ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य आदि सभी के कर्म और वृत्ति जन्मानुसार ही अलग-अलग रूप से निर्धारित होती आ रही थी। लेकिन इसी व्यवस्था के विरुद्ध शंकरदेव ने धर्म को सभी श्रेणी के लोगों तक पहुँचाने का कार्य किया। ईश्वर सभी के लिए हैं और वह धर्मशास्त्र भी सभी के लिए हैं। जिस श्रेणी के लोग कृषि कार्य, व्यापार, आदि के द्वारा उच्च वर्ग की लोगों तक जीने का साधन उपलद्ध करवाते थे, ऐसे एक श्रेणी को धर्म शास्त्र से दूर रखना उचित नहीं है। शंकरदेव केवल एक जाति व संप्रदाय के लिए नहीं, अपितु सभी के लिए कुछ करना चाहते थे;जिसका अंश सभी को समान रूप से प्राप्त हों। भक्त को एक नवीन सत्य के पथ पर अग्रसर कराने के लिए शंकरदेव ने कई त्याग किये। उनके द्वारा निर्माण किया गया यह वैष्णव धर्म कृषक, दरिद्र, निरक्षर, साधारण श्रम जीवी लोगों के लिए सत्य के पथ का अन्वेषण करता है। उपन्यासकार

सैयद अब्दुल मालिक द्वारा लिखित इस उपन्यास में शंकरदेवकालीन समस्त परिवेशों को रेखांकित किया गया है।

सामाजिक परिस्थिति :

श्रीमंत शंकरदेव के समय हिन्दू धर्म विकास की चरमसीमा पर था। हिन्दू धर्म के प्रवर्तक ब्राह्मण- पुरोहितों के द्वारा देश के राजा-महाराजा भी अपने सभी धार्मिक कर्म करवाते थे। फलस्वरूप राजा हो या प्रजा, सभी के घरों में हिन्दू धर्म के रीति-रिवाज को लोकप्रियता मिली। देश के ऐसे वर्ग जो श्रमजीवी थे ,वे भी उन ब्राह्मणों की भूमि पर कृषि कार्य करके अपने परिवारों को किसी प्रकार चलाते थे। फलस्वरूप यह भूमिहीन कृषक वर्ग उन ब्राह्मणों का आज्ञाकारी हो गया । इसप्रकार उन दरिद्र कृषकों को भी ब्राह्मणों द्वारा गढ़े गये हिन्दू धर्म को स्वीकार करना पड़ा था, जिसके कारण किसी भी धार्मिक कार्य को करना उन कृषकों के लिए आवश्यक हो जाता था । उन खेतिहर मजदूर तथा दरिद्र लोगों को अपने परिवार के किसी सदस्य के मृत्युपरांत उनकी आत्मा की शांति के लिए अनेक दान-दक्षिणा ब्राह्मणों को देना पड़ता था। अपने मृत व्यक्ति की आत्मा की सद्गति के लिए परिवार के व्यक्तियों को सोलह प्रकार के द्रव्य दान में देने पड़ते थे । कम परिमाण में ही सही लेकिन बिना यह सब दिए कोई मृतक का कर्म पूरा नहीं माना जाता था। इसप्रकार भूमि, गाय आदि सभी को दानस्वरूप देकर यह कृषि से जुड़े गाँव के दरिद्र जन क्रमश: अधिक दरिद्र होते जाते थे ।

शंकरदेव की चिंता का प्रमुख कारण था समाज में प्रचलित अंधविश्वास। ब्राह्मणों के द्वारा गाँव के तथा अन्य बहुत सारे लोग मृतकों की पूजा पार्वण करवाते हैं। इन सब कार्य के प्रति शंकरदेव की धारणा अलग थी। शंकरदेव ने देखा कि ये दरिद्रता में जी रहे लोग वाकई इतनी समस्या में जी रहे हैं, किसी तरह दो जून का खाना जुटा पा रहे हैं। इसके उपरांत यदि वे अपनी शेष संपत्ति भी इस प्रकार ब्राह्मणों को दान देते रहे, तो उनका उनके लिए जीना दुरूह हो जायेगा शंकरदेव का मानना था कि अपनी सारी संपत्ति देकर ब्राह्मणों को अमीर बनाने से मृत और जीवित लोगों का मंगल संभव नहीं हो सकता।

शंकरदेव की प्रखर प्रतिभा, उदार व्यक्तित्व, गहरी निष्ठा व एकाग्रता के बल पर उन्होंने अत्यंत कम उम्र में हिन्दू दर्शन, तर्कशास्त्र, साहित्य, अलंकार शास्त्र और व्याकरण के ज्ञान प्राप्त कर लिए थे। उस समय समाज भी जाति पर आधारित था। अर्थात विद्वान-पंडित-ब्राह्मण आदि का समाज अलग था और अन्य लोगों का समाज अलग। महिलाओं को तो टोलों में प्रवेश करने और शास्त्रों की बात सुनने तक की मनाही थी। ब्राह्मणों का काम पूजा-पार्वण, मृतकों का प्रेत-क्रम करना और हिन्दू धर्मानुसार सम्पन्न शादी-ब्याह में होम-यज्ञ आदि करवाना था। विद्वान समझकर इन ब्राह्मणों के प्रति लोग पर्याप्त मान-सम्मान भी रखते थे। राज्य के राजा-महाराज तथा सामंती शासकों के बीच भी उनका प्रभाव कुछ कम नहीं था।

तत्कालीन समय में शंकरदेव की आप्राण प्रचेष्टा और कर्तव्यपरायणता के बल पर गाँव की साधारण जनता की समस्याओं का निराकरण हुआ। समाज में ब्राह्मणों का प्रभाव इतनी ज्यादा हावी हो गया था कि समाज के निम्न श्रेणी के लोग सदा ही धार्मिक रीति-रिवाजों में उलझे रहने लगे। शंकरदेवकालीन इसी परिस्थिति के संबंध में प्राध्यापक भूपेंद्र रायचौधारी कहते हैं-

> सामाजिक जीवन में सबसे अधिक सम्मान ब्राह्मणों को प्राप्त था। धार्मिक रीति-रिवाजों के अधिकारी होने के पतिरिक्त वे विज्ञान एवं कला की चर्चा भी करते थे। वे राज पुरोहित और राजकवि होने के अतिरिक्त मंत्री तथा उच्चतम राज अधिकारी भी होते थे।(रायचौधरी 1997:10)

ऐसी एक विकट परिस्थिति में शंकरदेव ने नव वैष्णव धर्म के प्रवर्तन से इस समाज में नयी रोशनी बिखेरने का काम किया। उन्होंने एक नये चिंतन , नयी विचारधारा के साथ समाज को एक वृहद् जीवनादर्श के अनुगामी बनाने का काम किया। इस प्रकार सर्व साधारण के हृदय व मन में वे हमेशा के लिए अपना स्थान बना लिया।

धार्मिक परिस्थिति :

शंकरदेव को उन सभी धार्मिक कर्मकांड से साधारण लोगों को मुक्ति दिलाना था। ताकि गाँव के गरीब लोग ब्राह्मणों के पल्ले पड़कर अपने जीवन को नष्ट न दें । उच्च-निम्न के भेदभाव से बने रहने से ही ब्राह्मण उन सरल कृषिजीवी लोगों पर अपना प्रभाव विस्तार करने में सक्षम हुए थे। निरक्षर ग्रामीण लोगों तक शास्त्रों की जटिल बातों को सहज रूप से पहुँचाने के लिए शंकरदेव ने

'एक शरण हरिनाम धर्म' की प्रतिष्ठा की । इस धर्म के अनुसार न कोई बड़ा है, न कोई छोटा; न कोई शिक्षित, न अशिक्षित। इसमें मूर्ति पूजा नहीं है, दान-दक्षिणा आदि देने का भी प्रावधान नहीं है; सिर्फ भगवान की शरण में अपनी भक्ति निवेदित करना ही इस धर्म का लक्ष्य है।

शंकरदेव के अनुसार कोई भी धार्मिक व्यक्ति का यह लक्ष कदापि नहीं हो सकता कि वे अन्य धर्म पालन करनेवालों के प्रति शत्रुता का भाव रखे। शंकरदेव के धर्म के ऐसे विचारों से क्रोधित होकर ब्राह्मणों ने उनके धर्म के प्रति भी विरोध की अग्नि जलायी थी। ऐसा नहीं था कि सभी ब्राह्मण उनके विरोधी थे ; कुछ ब्राह्मण ऐसे भी थे, जो उनके प्रति बहुत आदर रखते थे। अपनी तर्कशीलता व बुद्धिमत्ता से शंकरदेव उन ब्राह्मणों को बताया था-

> आमि वैष्णबे मूर्ति पूजा नकरो, पूजार नामत बलि दि जीव बध नकरो, कोनो बिग्रहक संतुष्ट करिबर कारणे खाद्य बस्तु अर्पण नकरो। जीवक हत्या करिले पुण्य नहय, रक्षा करिलेहे पुण्य हय। जीवर प्रति सदय आचरण कराटो भाल ने, जीवहिंसा कराटो, निष्ठुर आचरण कराटो भाल? (मालिक 2022:269)

अर्थात, हम वैष्णव मूर्ति पूजा नहीं करते, पूजा के नाम पर बलि देकर जीव का बध नहीं करते । कोई भी विग्रह को संतुष्ट कराने हेतु खाद्य बस्तु अर्पित नहीं करते । जीव की हत्या करने से नहीं, रक्षा करने से ही पुण्य की प्राप्ति होती है। जीव के प्रति नम्र आचरण करना अच्छा है या जीव के प्रति हिंसा करना या निष्ठुर आचरण करना अच्छा है?

भगवान और देवी-देवों को संतुष्ट करने के लिए निर्दोष प्राणी की हत्या करना कहा तक शुभकारी है। भगवान कभी नहीं चाहते कि उन्हें संतुष्ट करने हेतु उन्हीं के द्वारा सृजन किये गये प्राणी की हत्या हो। कोच राजा नरनारायण के द्वारा जब कामाख्या मंदिर की स्थापना हुई थी, तब भी प्रायः एक सौ चालीस लोगों को देवी के सामने बलि चढ़ा दी गयी। इसप्रकार जब हयग्रीव माधव मंदिर को नवीन रूप में प्रतिष्ठा की गयी थी, तब भी कई बलि चढ़ा दी गयी थी। देवी को प्रसन्न करने के लिए इसप्रकार जीवित मनुष्यों को बलि पर चढ़ाना कहाँ से धर्म व पुण्य का काम कहलायेगा। शंकरदेव कहते हैं-

देवीक संतुष्ट करिबर कारणे पुजारिए ये अन्य मानुहक बलि दियाय, देवीर परम भक्त हिसापे देवीर आगत निजे बलि नायाय किय? (मालिक 2022:269)

अर्थात, देवी को संतुष्ट करने के लिए ये पुजारी जो अन्य व्यक्तियों को बलि पर चढ़ाते हैं, देवी के परम भक्त होने के नाते वे स्वयं बलि पर क्यों नहीं चढ़ जाते ?

शंकरदेव का वैष्णव धर्म :

अत्यंत दयालु, उदार, निर्भीक व्यक्तित्व सम्पन्न महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने सामाजिक सद्भाव, धार्मिक सहिष्णुता से समाज को एक सही दिशा प्रदान करने के लक्ष्य से ही वैष्णव धर्म की स्थापना की थी। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के धर्म को एकशरण हरिनाम धर्म, नाम धर्म, भागवत या भागवती धर्म, महापुरुषीया धर्म, एकशरण भजन हरिनाम धर्म, नव वैष्णव धर्म और भक्ति धर्म आदि नामों से जाना जाता है। अनंत ब्रह्मांड की सृष्टिकर्ता, प्रलय आदि की रक्षाकर्ता सर्व अवतार रूपी जो एक नारायण हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं और उन्हीं का शरणागत होना शंकरदेव के धर्म का मूल सिद्धांत है।

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने शंकरदेव के नव-वैष्णव धर्म से जुड़े सभी आदर्शवादी तत्वों का वर्णन किया है। उनके द्वारा प्रवर्तित नाम धर्म में भक्ति ही प्रमुख बिन्दु हैं, जातिभेद, वर्ण-विचार, स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब के बीच कोई भेदभाव नहीं है। इस कलियुग में भी नाम का ही महत्व है। यद्यपि इस कलियुग में ही अनैतिकता, भ्रष्टाचार, लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि का प्रभाव ज्यादा है फिर भी नाम कीर्तन आदि के द्वारा संसार के बंधन से मुक्त हो सकते हैं। सत्य, त्रेता, द्वापर युग में जो फल पूजा पार्वण, यज्ञ, ध्यान आदि के द्वारा मिला था कलियुग में भगवान विष्णु के नाम-कीर्तन से उस फल की प्राप्ति होती है। लोगों के जात-पात का विचार न करते हुए समाज के अवहेलित, अत्यंत निम्न रूप से परिचित होते आ रहे उन साधारण लोगों के महत्व को भी अपने शुद्ध मन से स्वीकारते थे और उनके प्रति श्रद्धा निवेदित करते थे । मनुष्य की देह और मन की पवित्रता ही समाज के लिए कुछ अच्छा करने को प्रेरित करती है, योग्यता प्रदान करती है। चरित्र और मन की ऊंचाई ही मनुष्य को मानवीय शक्ति की अधिकारी बनाती है, वंश गौरव नहीं। शंकरदेव के अनुसार-

> नाम धर्मत सकलो भकतर समान अधिकार आछे। नाम धर्मई सकलो भकतके समान मर्यादा आरु समान अधिकार दिये। ईश्वरर नाम कीर्तन करात कोनो जाति अजाति नाइ।(मालिक 2022:451)

अर्थात, नाम धर्म में सभी भक्तों का अधिकार समान है। नाम धर्म सभी भक्तों को समान मर्यादा और समान अधिकार प्रदान करता है। ईश्वर के नाम-कीर्तन करने के लिए कोई जाति-अजाति का प्रश्न नहीं आता है।

उपन्यासकार ने इस उपन्यास के कई अध्यायों में माधवदेव के साथ शंकरदेव के साक्षात्कार का भी वर्णन किया है। असम के दो पुरोधा व्यक्ति शंकरदेव और माधवदेव ने एक साथ वैष्णव धर्म का प्रचार व प्रसार किया। माधवदेव भी पहले घोर शाक्त पंथ के अनुयायी थे। उन्होंने भी मूर्ति पूजा, देवी पूजा, बलि विधान आदि मानते थे । परवर्ती समय में वे इन सब की निरर्थकता समझते हुए माधवदेव कहते हैं-

> गुरुजनार असाधारण शास्त्र ज्ञान आरु युक्तिर सम्मुखत हार मानि मइ तेराक गुरु बुलि स्वीकार करिछो आरु पूजा पार्वण, बलि विधान, मूर्ति पूजार असार्थकता बुजिब पारि निराकार निरंजन अनादि अनंत, निर्गुण नियंता कृष्ण भगवानर ओचरत निजके समर्पण करिछो।(मालिक 2022:267)

अर्थात, गुरु शंकरदेव के असाधारण पांडित्य, शास्त्र-ज्ञान और तर्क के सामने हार मानते हुए मैं उन्हें गुरु स्वरूप स्वीकार करता हूँ। पूजा-पार्वण, मूर्ति-पूजा, बलि-प्रथा आदि की निरर्थकता समझकर निर्गुण निराकार, अनादि अनन्त भगवान कृष्ण के समक्ष स्वयं को समर्पित करता हूँ।

वैष्णव मतवाद के प्रवर्तक श्रीमंत शंकरदेव पर कई सारे आरोप लगाये गये । उस समय ब्राह्मणों का काम था कि किस प्रकार राजसभा में शंकरदेव को दोषी ठहराया जाएँ। ब्राह्मणों में से श्री राम भट्टाचार्य, कविराज मिश्र, ब्रह्मानन्द भट्टाचार्य आदि शंकरदेव के घोर विरोधी थे। जब से शंकरदेव ने वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया तब से साधारण निरक्षर लोग उस धर्म के प्रति आकर्षित होते रहे । यह समय ब्राह्मणों के लिए भी अत्यंत चुनौतीपूर्ण साबित हुआ। इसप्रकार राजा के पास जाकर शंकरदेव के विरुद्ध आपत्ति दर्शाने के सिवाय उनलोगों के पास और कुछ रास्ता बचा ही नहीं। ब्राह्मणों का मानना यह था कि समाज के सभी प्राणी का बँटवारा जन्म के अनुसार होता है और

जन्म के अनुसार शंकरदेव को धर्म शास्त्र की व्याख्या करने का भी अधिकार नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि शंकरदेव हम जैसे ब्राह्मणों का विरोध कर रहे हैं । वे अपना एक शरणीया नाम धर्म स्थापित कर समाज में सभी जाति के लोगों को एक करना चाहते हैं, शास्त्र की बातों को सभी साधारण जनों तक पहुँचाना चाहते है, समाज में देवी-देव की पूजा, मूर्ति-पूजा आदि में भी बाधा डाल रहे हैं। राजसभा में शंकरदेव पर मामला भी चलता है। परंतु अत्यंत उदार, दयालु, मानवीय गुणसंपन्न इस महापुरुष की वाणी को सुनकर राजा भी इनका विरोध नहीं कर पाते और अंततः राजा स्वयं उनकी प्रशंसा करने लग जाते हैं।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज को सुधारने में, पीढ़ी से पीढ़ी तक संस्कृति को प्रसारित करने में तथा एक सार्वभौमिक भातृत्वबोध की नींव स्थापित करने में शंकरदेव का योगदान प्रमुख्य है। तत्कालीन समाज में समस्त समुदाय पर इनका प्रभाव रहा है तथा इनके योगदान से ही धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से समाज को एक नई ऊर्जा मिली। सैयद अब्दुल मालिक का यह उपन्यास भक्ति रस से सराबोर तथा श्रीमंत शंकरदेव की ओजस्वी व्यक्तित्व और धार्मिक सद्भावना से परिपूर्ण एक आदर्शमूलक उपन्यास है। उपन्यास में उपन्यासकार ने एक महापुरुष के जीवन-दर्शन को जिस प्रकार वर्णन किया है, उससे पाठकों के हृदय में उनके प्रति एक धार्मिक सद्भाव और प्रेम का भाव जन्म लेता है। उपन्यासकार नाम धर्म की महत्ता के बारें में लोगों को बताने का प्रयास करते हैं और साथ ही सामाजिक विषमताओं, धार्मिक पाखंडों का नाश नाम धर्म के जरिए कैसे किया जा सकता इसका भी उल्लेख किया है। उपन्यासकार नव वैष्णव धर्म के प्रवर्तक शंकरदेव की वाणी के द्वारा समाज में एक सुखद वातावरण का निर्माण करना चाहते हैं। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में शंकरदेव का जनसाधारण के प्रति मानवीय मूल्यों से संपृक्त उदार व्यक्तित्व को दिखाया है। अपनी धार्मिक निष्ठा के जरिए सर्वसाधारण लोगों तक सकारात्मक ऊर्जा के साथ गंभीर मानवतावादी चेतना प्रवाहित करने में असम के इस महान गुरु का स्थान अन्यतम है। तत्कालीन समाज में फैले सामाजिक व धार्मिक पाखंडों को समूल रूप से खत्म करने के लिए उनका योगदान अतुलनीय है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने शंकरदेव के जीवन से जुड़े समस्त पहलुओं को बहुत ही गहराई से उद्भासित किया है। समाज की नकारात्मक शक्तियों के विरुद्ध यह

उपन्यास सद्भाव का संदेश देता है। अतः लोग उनके वृहद् जीवनादर्श को सामने रखकर उस समय के चिंतन का पुनरविश्लेषण करते हुए आज के समाज में धार्मिक सहिष्णुता व एकता का वातावरण निर्माण करने में भी सक्षम होंगे।

ग्रंथ-सूची :

मालिक, सैयद अब्दुल.धन्य नर तनु भाल.सप्तम.गुवाहाटी: स्टूडेंट्स स्टोर्स,2022.

रायचौधरी, भूपेंद्र. शंकरदेव और तुलसीदास की वैचारिक भावभूमि.प्रथम.गुवाहाटी:भारतीय संस्कृति परिषद, 1997.

\

संपर्क सूत्र:
पीएच.डी शोधार्थी
गौहाटी विश्वविद्यालय
मोबाईल-6002485654
ई-मेइल: jishurani1@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 127-134

कवि शमशेर की काव्य-भाषा

✍ **आशीष जायसवाल**

शोध-सार:

काव्य-भाषा में शमशेर ने हिन्दी और उर्दू के बीच सेतु का काम किया। हिन्दी को उर्दू की मिठास, तराश और लोच देने का श्रेय शमशेर को ही जाता है। यही काम प्रेमचन्द ने हिन्दी गद्य क्षेत्र में किया। उनकी काव्यभाषा मुख्यतः बिम्बात्मक है। भाषिक संवेदना के साथ बिम्बों-प्रतीकों का अद्भुत प्रयोग उनकी कविताओं को विशेष बनाता है। शमशेर के यहाँ वाक्य ही भाषा की इकाई है और उस में वह बोलचाल के मुहावरे और लय का प्रयोग करते हैं। आज के अधिकतर युवा कवियों ने शमशेर की भाषा-परम्परा को ही अपने लिए अनुकरणीय माना है। प्रस्तुत आलेख में उनकी काव्यभाषा को समझने एवं विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

बीज-शब्द: *प्रयोगवाद, बिम्ब, काव्य, काव्यभाषा, छायावाद, प्रतीक, चित्र, कविता*

प्रस्तावना :

शमशेर मूल रूप से प्रयोगवादी कवि हैं। इस दृष्टि से वे अज्ञेय की परम्परा में आते हैं। पर शमशेर और अज्ञेय में अंतर यह है कि शमशेर के प्रयोगवाद का रथ संवेदना का धरातल नहीं छोड़ता। शमशेर का काव्य व्यक्तित्व अपने में असाधारण है। वे कवि-कर्म के प्रति सचेत रचनाकार हैं। वे आवेग के नहीं, संयम और सुनियोजन के कवि हैं। उनकी कविता छायावादी कवियों की अनुभूतिक तरलता और उत्तर छायावादियों की सहजता से सायास रूप से भिन्न है। उनमें हिन्दी कविता की परम्परा से दूरी बनाकर अपनी विशिष्ट पहचान अर्जित करने की एक शांत और सादी आकांक्षा दिखती है।

विश्लेषण :

शमशेर ने स्वाधीनता एवं क्रांति को अपनी निजी चीज़ की तरह अपनाया। इंद्रिय सौन्दर्य के सबसे संवेदनापूर्ण चित्र देकर भी वे अज्ञेय की तरह सौदर्यवादी नहीं हैं। उनमें एक ऐसा ठोसपन है, जो उनकी विनम्रता को ढुलमुल नहीं बनने देता। साथ ही किसी एक चौखट में बेधने भी नहीं देता। शमशेर उर्दू काव्यभाषा के संस्कार को हिन्दी कविता में लाये। इन पर उर्दू और पाश्चात्य काव्यधाराओं का जितना प्रभाव पड़ा, ये उतने ही मौलिक हुए।

शमशेर हिन्दी के पहले कवि हैं, जो स्पेसिंग अथवा अन्तराल को काव्य-भाषा का सार्थक अंग बनाने की कोशिश करते हैं। वे शब्दों और पंक्तियो के मध्य अन्तराल का बहुत अर्थगर्भी प्रयोग करते हैं। इन्हें समझे बिना उनकी कविता के समुचे मर्म को पकड़ पाना बहुत मुश्किल है। शमशेर की काव्यभाषा अपने में बिल्कुल अलग है। इसी वजह से कई बार उसे समझना बहुत मुश्किल होता है। विजयदेवनारायण साही जी भी यही नयापन देखते हैं और कहते हैं-

> शमशेर ने कविता के छन्द्र, लय, शब्दावली सब में बहुत नये-से प्रयोग किये हैं। उन्होंने ऐसे नये प्रतीको एव बिम्बों का सृजन किया है, जो कविता के अभ्यस्त पाठकों और श्रोताओं को अक्सर चुनौती की तरह लग सकते हैं।(उपाध्याय 1996:37)

कविता मूलरूप से भाषा कर्म है। इस बात को अगर बढ़ाकर कहें, तो हम कह सकते हैं कि भाषा ही कविता है। किसी भी रचना की चर्चा करते वक़्त या तो हम उसके अर्थ से आरम्भ करके भाषा सौन्दर्य तक जाते हैं या भाषा से आरम्भ करके अर्थ तक जाते हैं अर्थात हम कह सकते हैं कि किसी भी रचना को समझने का आरम्भिक एंव अन्तिम बिन्दु उसकी भाषा है।

कविता में भाषा का स्वतंत्र रूप से महत्त्व है। वह केवल विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम नहीं है। भाषा की रचनात्मकता के स्तर पर ही कवि की अनुभूति एवं कल्पना की सीमाएँ बँधती या खुलती हैं।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक में काव्य-भाषा का भेद निरूपित करते हुए लिखा है-

> सामान्य भाषा शब्दों के साथ उनके सुनिश्चित अर्थ होने को उचित एंव वांछनीय समझती है, जबकी काव्य भाषा के लिए यह सुनिश्चित सह्य नहीं है। वह शब्दों के रूप

> को बार-बार अमूर्त करती है। जैसे ही यह अनुभव होता है कि किसी शब्द के साथ कोई विशिष्ट अर्थ बहुत अधिक संबद्ध हो गया है; कवि बलपूर्वक उसे अलग कर लेना चाहता है, अर्थ की स्थूलता को तोड़कर उसकी अमूर्त ऐंठ उन्मुख प्रवृत्ति को पुन: स्थापित करना चाहता है।(चतुर्वेदी 1964:14)

काव्य-भाषा वस्तुतः चित्रात्मक भाषा ही होती है। इसलिए कुछ आलोचकों ने कविता को एक बोलता हुआ चित्र कहा है और चित्र को एक मूक कविता। सामान्य भाषा को संवेदात्मक चित्रों की भाषा में बदलने का काम वह बिंब प्रक्रिया करती है, जिसके अधीन अलंकार प्रतीक, मिथ यहाँ तक कि स्वयं बिम्ब भी होते हैं। रोजमर्रा के प्रयोग में आने वाली भाषा बिम्ब का स्वभाव और रूप ग्रहण कर कविता बन जाती है। इसलिए लक्षणा एंव व्यंजना जैसी शब्द शक्तियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं; क्योंकि वे भावनात्मक भाषा के निर्माण में काफी बड़ी भूमिका अदा करती हैं।

शमशेर की आलोचना करते समय उनकी कविता में कथ्य (प्रचलित अर्थ में) एक सामाजिकता के प्रभाव की चर्चा बार-बार होती है। यह बात प्रकारान्तर वाले प्रश्न से जुड़ी हुई है; क्योंकि उन्हें कहना नहीं है बोध भी नहीं देना है। वे कविता से किसी धर्मगुरु, किसी समाज सुधारक या किसी राजनीतिज्ञ का काम नहीं लेना चाहते। शमशेर कविता की सार्थकता 'रचनाकर्म' मानते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके यहाँ समाज का नितान्त अभाव है। भाषा प्रयोग के प्रति जागरूकता उनके द्वारा दिये गये वक्तव्यों एवं कविताओं द्वारा भी पता लगता है। उनके एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा-

> असल में मेरी दृष्टि शिल्प-शैली पर शुरू से ही जियादा रही है i'm very conscious of style मैं बचपन से ही उर्दू एवं हिन्दी में तुलनात्मक दृष्टि से भी पढ़ता था। इंग्लिश से भी उन्हें कम्पेयर करता था मैं ग्रैमर पर बहुत ध्यान देता था। It was a joy for me, always a joy my imagination had been awaked from the very beginning.(मलजय 1979:27)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शमशेर के यहाँ 'भाषा' रचनात्मक एवं संरचनात्मक दोनों स्तरों पर विशेष महत्व रखती है।

शमशेर काव्य-भाषा प्रायः संज्ञाप्रधान होती है, यद्यपि उनका संघर्ष क्रिया प्रधान भाषा अर्जित करने का रहा है। वस्तुतः उनका चित्रकार इस संघर्ष को बाधित करता है। चित्रकार की दृष्टि वस्तुओं पर रूपाकारों पर टिकती है। उसके लिए संज्ञाएँ महत्वपूर्ण हो उठती हैं। एक पीली शाम', 'सींग और नाखून' व 'शिला का खून पीती थी' में इसीलिए संज्ञापदों की प्रधानता है। वस्तुतः जहाँ भी उनका चित्रकार किसी वातावरण की सृष्टि बहुलता करने लगता है, संज्ञापदों की संख्या बढ़ जाती है।

शमशेर के विषय में अक्सर कहा जाता है कि वे अपनी अनुभूति केवल प्रतीकों एवं बिम्बों द्वारा ही कराते हैं; पर ये सर्वथा मान्य नहीं, वे भाषा द्वारा भी अनुभूत कराते हैं।

इनकी एक रचना है 'सूर्यास्त' इसमें वे उस जल की बात करते हैं जो विशद है और इस विशदता को प्रकट करने के लिए वे बिंबों एवं प्रतीकों का सहारा नहीं लेते, वरन मात्र शब्दों द्वारा अपनी बात रखते हैं-

फेन फूलों से गुथी हुई,
सागर लटों के बीच बीच।
थाह लेता,
विशद,
जल विशद,
विशद।(सिंह,सं 1990:149)

शमशेर की कविता में एक आंतरिक संवाद, या एकालाप लगातर चलता है। कोई एक पाठक है, जो सदैव उनके समक्ष है, जिसे वे उद्बोधन देते रहते हैं। यह उनका दूसरा आधार भी है। उनकी एक कविता 'सावन' का अन्तिम अंश मोनोलॉग की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है-

आज मेरे लिए तुम
उसकी हद हो
उस बात की हद हो
जो मेरे लिए हो- तुम

वह मेरी
हद हो
तुम
तुम मेरे लिए
मेरी हद हो मेरी हद हो
तुम
मेरे
लिए...(सिंह,सं1990:73)

कविता में तुम के साथ कवि का संवाद अन्त में एकालाप हो जाता है। यहाँ पर कवि कन्फ्यूज्ड नहीं है, वे 'मैं और तुम' में डूब गये हैं। शमशेर की एक और विशेषता यह है कि वे क्रियापदों के बीच में क्रियाविहीन पद के संयोजन से विशिष्ट प्रभाव पैदा करते हैं। इसी का एक प्रयास हमें 'यूरोपीय संगीत सुनकर' में दिखता है। शमशेर की कविताओं में सर्वनाम के कई प्रकार के प्रयोग भी हमें सायास ही मिल जाते हैं। वे सर्वनाम में परिवर्तन द्वारा वह निकटता एंव दूरी का बोध कराते हैं और इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें 'टूटी हुई, बिखरी हुई' कविता में हमे मिलता है। शमशेर रहस्य का प्रभाव पैदा करने के लिए भी सर्वनामों का प्रयोग करते दिखते हैं-

वह पैदा हुआ है जो मेरी मृत्यु को सँवारने वाला है। (सिंह,सं 1990:108)

यहाँ 'वह' एक विशेष प्रकार के रहस्य एवं कौतुहल को उभारता है। शमशेर के यहाँ मोटे तौर पर भाषा के तीन स्तर हैं। पहला स्तर उनकी गजलों में दिखाई देता है। दूसरा स्तर 'घनीभूत पीड़ा' जैसी कविताओं में मिलता है, जो छायावादी काव्य-भाषा से प्रभावित है और तीसरा भाषा स्तर- राग, टूटती हुई, बिखरी हुई' 'आओ', 'दो मोती कि दो चंद्रमा होते' और 'नीला दरिया बरस रहा' जैसी रचनाओं में है,जहाँ बोलचाल की भाषा प्रमुख हो उठी है। इस तीसरे भाषा स्तर पर शमशेर का खास निजी मुहावरा लक्ष्य किया जा सकता है। इन कविताओं में लोक भाषा के सायास प्रयोग हैं और इन प्रयोगों की सफलता संदिग्ध जान पड़ती है।

शमशेर की काव्य-भाषा में अव्ययों का महत्वपूर्ण स्थान है। शमशेर के अलावा उनका ऐसा सार्थक प्रयोग मीर, मौमिन, गालिब और निराला के यहाँ ही दृष्टिगत होता है। आह, हाय, अहा, तो ही, भी आदि शमशेर के वाक्यों में विशिष्ट अर्थ छाया अर्जित करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जैसे-

और

जादू टूटता है इस उषा का अब

सर्योदय हो रहा है। (सिंह,सं 1990: 149)

शमशेर की काव्य-भाषा में कहीं-कहीं संगीत की-सी स्वयं पर्याप्तता का यह गुण की विशिष्टता मिलती है। शमशेर की 'वह सागर' इसका सुन्दर उदाहरण है-

वह सागर

उठा जो, उठा, और-और-और

पाने मुझे

अपने अंक में ही लेने मुझे,

कहाँ टकराता

अपनी मौन लहरें -

मैं हूँ यहाँ

निश्चलतम। (अरगड़े 1988: 56)

यहाँ शब्द केवल भाव संकेत या टोन में बदल गये हैं। संगीत में भी भाव संकेत या 'टोन' ही प्रमुख होता है। शमशेर की सबसे बड़ी खूबी उनके शब्दों में है,जो हीरों की तरह कई दिशाओं में प्रकाश फेंकते हैं। 'एक नीला आइना बेठोस' ऐसी ही एक कविता है। शमशेर की कविताएँ 'अरथ अमित अति आखर थोरे' को चरितार्थ करती है। उनकी कोशिश कम से कम शब्दों में अपनी बात कह देने की होती है फालतू शब्द उनके यहाँ नहीं के बराबर मिलेंगे।नामवर सिंह का भी यही मानना है । वे कहते हैं-

विचारों की बकवास और भावों क भड़ास से बचकर उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म मूर्त इन्द्रिय-बोधों के दृढ़ आधार पर कविता का ढाँचा खड़ा किया।(सिंह,सं 1990:158)

शमशेर की कविता में उच्चारण का विशेष महत्व है। इसका महत्व हमें 'संध्या' जैसी कविताओं के सन्दर्भ में स्पष्ट होता है। इसके अलावा शमशेर के भाषिक रचाव में शाब्दिक आवर्त बहुत महत्वपूर्ण है। शब्दों के दोहराव से वे एक प्रकार की गूंज, एक प्रकार के सिलसिले का आभास कराते हैं, जो अर्थ को विशिष्ट ढंग से अर्जित करने में सहायता देता है। 'ये लहर घेर लेती हैं', 'दो बातें', 'मॉडल आर्टिस्ट' और 'नीला दरिया बरस रहा' में शाब्दिक आवर्ती के अर्थगर्भी प्रयोग लक्ष्य किये जा सकते हैं।

शमशेर ने दो प्रकार से मुक्तछन्दों का प्रयोग किया है- छन्दोबद्ध पंक्ति को तोड़कर और बोलचाल की लय को आधार बनाकर। पहले प्रकार का प्रयास 'बात बोलेगी' जैसे कविताओ में किया गया है-

बात बोलेगी हम नहीं भेद खोलेगी बात ही। (सिंह,सं 1990: 43)

वाक्य विन्यास की विविधता शमशेर में अपने समकालीन कवियों की अपेक्षा कहीं ज्यादा है। इनके यहाँ 'मैंने शाम से पूछा' जैसे सरल वाक्य मिलेंगे, तो शाम होने को हुई, लौटे किसान, दूरे पेड़ों में बढ़ा खग-ख' जैसे संयुक्त वाक्य भी। इन्हीं विशेषताओं के कारण रंजना अरगड़े शमशेर की विशेषता करते हुए कहती हैं-

> भाषा ही वह बिन्दु है, जहाँ हम शमशेर को उनके समकालीनों और आज के कवियों से अलग कर सकते हैं।(अरगड़े 1988:72)

निष्कर्ष:

काव्य-भाषा में शमशेर ने हिन्दी और उर्दू के बीच सेतु का काम किया। हिन्दी को उर्दू की मिठास, तराश और लोच देने का श्रेय शमशेर को ही जाता है। यही काम प्रेमचन्द ने हिन्दी गद्य क्षेत्र में किया। आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा को समझने के लिए हमें शमशेर एवं अज्ञेय को दो भाषिक छोरों पर रखकर देखना होगा। शमशेर के यहाँ वाक्य ही भाषा की इकाई है और उस में वह बोलचाल के मुहावरे और लय का प्रयोग करते हैं। आज के अधिकतर युवा कवियों ने शमशेर की भाषा-परम्परा को ही अपने लिए अनुकरणीय माना है।

ग्रंथ-सूची :

अरगड़े, रंजना.कवियों के कवि शमशेर.नई दिल्ली:वाणी प्रकाशन, 1988.

उपाध्याय, मंजुल.अथतो काव्य जिज्ञासा.नई दिल्ली:वाणी प्रकाशन, 1996.

कुमार,निर्भय. शमशेर बहादुर सिंह की आलोचना दृष्टि. नई दिल्ली:लोकभारती प्रकाशन, 2019.

चतुर्वेदी, रामस्वरूप.भाषा और संवेदना.कलकत्ता:भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1964.

तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद. समकालीन हिन्दी कविता. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 2010.

मलजय.कविता से साक्षात्कार.हापुड़:संभावना प्रकाशन, 1979.

मिश्र, गिरिश्वर,संपा.शमशेर बहादुर सिंह संचयिता.नई दिल्ली: शिल्पायन, 2017.

श्रोत्रिय, प्रभाकर. भारतीय साहित्य के निर्माता शमशेर बहादुर सिंह. दिल्ली:साहित्य अकादमी, 2011

सिंह, दूधनाथ,संपा. एक शमशेर भी है. नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 2011.

सिंह, नामवर, सं.प्रतिनिधि कविताएँ- शमशेर बहादुर सिंह.नई दिल्ली:रजकमल प्रकाशन, 1990.

सिंह, नामवर.कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता.नई दिल्ली:राजमकल प्रकाशन, 2016.

सिंह, शमशेर बहादुर, संपा.प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1990.

संपर्क-सूत्र:
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क: 9795118421
ई-मेइल: ashishjaiswal916@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 135-147

प्रेमचंद की पत्रकारिता और दलितोद्धार का प्रश्न

✍ अहमद रजा

शोध-सार :

प्रेमचंद ने जिस प्रकार अपने साहित्य में दलितों को स्थान देकर उनकी समस्याओं को उजागर किया है, उसी प्रकार अपनी पत्रकारिता में भी किया है। प्रेमचंद गरीबों और पीड़ितों की आवाज़ थे। शोषितों का उद्धार करना ही उनकी लेखनी का मुख्य उद्देश्य था। प्रेमचंद चूंकि गांधीजी की विचारधारा से बहुत प्रभावित थे, इसीलिए उन्होंने अम्बेडकर की दलित संबंधी विचारधारा का समर्थन न कर अपनी पत्रकारिता के द्वारा गांधीजी का समर्थन किया है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को घर-घर पहुंचाने और लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए ही वे साहित्य से पत्रकारिता के क्षेत्र में आते हैं। पत्रकारिता जनमत निर्माण में साहित्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन करती है। इसी जनमत को संगठित करने के लिए प्रेमचंद पत्रकारिता का सहारा लेते हैं।

बीज शब्द : *दलित, हरिजन, अंबेडकर, महात्मा गांधी, पत्रकार प्रेमचंद, ब्राह्मण, पृथक निर्वाचन*

प्रस्तावना :

प्रेमचंद न केवल एक सफल साहित्यकार थे, बल्कि एक निर्भीक पत्रकार भी थे। ब्रिटिश के क्षसंकाल में भारत के प्रायः सभी बड़े साहित्यकारों ने साहित्य के साथ पत्रकारिता को भी अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन बनाया था। पत्रकारिता चूंकि साहित्य की अपेक्षा जनमत निर्माण में अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है, इसीलिए उस युग की पत्रकारिता में ब्रिटिशयुगीन भारत की समस्त समस्याओं को स्थान दिया गया था। प्रेमचंद गरीबों और शोषितों के लेखक माने जाते हैं। उन्होंने ब्रिटिश भारत की दयनीय स्थिति पर केवल क्षोभ ही नहीं प्रकट किया बल्कि उसके निवारण का

मार्ग भी जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके द्वारा दलितोद्धार संबंधी लेख उनकी पत्र-पत्रिकाओं में आज भी विद्यमान है।

विश्लेषण :

हिंदी साहित्य का जो रूप वर्तमान समय में दिखाई देता है, उसका अस्तित्व कहीं न कहीं ब्रिटिश भारत की विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में आज भी जीवित है। इस सत्य को उजागर करते हुए हिंदी साहित्य के आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' में लिखा है-

> प्रेमचंद सिर्फ कथाकार नहीं थे, पत्रकार भी थे। भारतेंदु से लेकर प्रेमचंद तक हिंदी साहित्य की परम्परा में यह बात ध्यान देने की है कि हमारे सभी बड़े साहित्यकार पत्रकार भी थे। पत्रकारिता उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी। यह पत्रकारिता एक सजग और लड़ाकू पत्रकारिता थी, जो देश विदेश के घटना–क्रम में दखल देती थी, जनता के जीवन और साहित्यकार के परस्पर संबंध को मज़बूत करती थी।(शर्मा 1967:130)

दलितों के अधिकार और उद्धार को लेकर पराधीन भारत में दो विचारधाराएँ प्रयासरत थीं। प्रथम विचारधारा का समर्थन गांधीजी और उनके सहयोगी कर रहे थे। गांधीजी की मान्यता थी कि दलितों का उद्धार हिंदू समाज के साथ मिलकर ही किया जा सकता है। गांधीजी स्वराज्य प्राप्ति में ही देश के सभी अल्पसंख्यकों का उद्धार समझ रहे थे। दूसरी विचारधारा के समर्थक थे अम्बेडकर और उनके सहयोगी। वे दलितों के पृथक निर्वाचन, पृथक स्कूल और पृथक समुदाय की मांग के समर्थक थे। गांधीजी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश के प्रत्येक समुदाय को संगठित करना आवश्यक समझ रहे थे। यही कारण था कि उन्होंने अम्बेडकर द्वारा किये जा रहे दलितों के पृथक निर्वाचन की मांग का विरोध किया था। प्रेमचंद ने अपनी पत्रकारिता में अम्बेडकर की मांग का समर्थन न कर गांधी की विचारधारा का समर्थन किया।

प्रेमचंद की पत्रकारिता की पृष्ठभूमि :

प्रेमचंद ने 'जागरण' समाचार पत्र का सम्पादन किया था। प्रेमचंद की पत्रकारिता की पृष्ठभूमि में गोलमेज़ सम्मेलन प्रमुख भूमिका अदा कर रहे थे। गोलमेज़ सम्मेलनों का एक प्रमुख विषय दलितों का मुद्दा था। अंग्रेज़ सरकार द्वारा भारत में संवैधानिक सुधारों पर चर्चा के लिए 1930–32 ई. के बीच तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया गया था। प्रथम गोलमेज सम्मेलन (नवंबर 1930 से जनवरी 1931) में सम्मिलित भारतीय नेताओं की तरफ से भारत की राजनीतिक स्थिति को लेकर बहस हो रही थी। इन बहसों में अन्य भारतीय नेताओं द्वारा अल्पसंख्यकों के पृथक निर्वाचन की मांग भी रखी गई थी। दूसरे गोलमेज सम्मेलन (1931 ई.) में गांधीजी ने इस पृथक निर्वाचन के विरुद्ध सम्मिलित निर्वाचन को भारतीय एकता को मजबूत करने के लिए जरूरी करार दिया। गाँधीजी का कहना था कि उनकी पार्टी (कांग्रेस) पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करती है। द्वितीय गोलमेज आंदोलन में गांधीजी की मांगें निम्नलिखित थीं-

- केंद्र और प्रान्तों में तुरंत और पूर्ण रूप से एक उत्तरदायी सरकार स्थापित की जानी चाहिए।
- केवल कांग्रेस ही राजनीतिक भारत का प्रतिनिधित्व करती है।
- अछूत भी हिन्दू हैं अतः उन्हें “अल्पसंख्यक” नहीं माना जाना चाहिए।
- मुसलामानों या अन्य अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन या विशेष सुरक्षा उपायों को नहीं अपनाया जाना चाहिए।

वहीं दूसरी ओर मुसलामानों, ईसाइयों, आंग्ल-भारतीयों एवं दलितों ने भी पृथक प्रतिनिधित्व निर्वाचन की माँग रखी और ये सभी एक ‘अल्पसंख्यक गठजोड़' के रूप में संगठित हो गये। चूंकि ब्रिटिश सरकार भी देश की एकता को खंडित करने के लिए पृथक निर्वाचन को लागू करना चाहती थी। लेकिन गाँधीजी साम्प्रदायिक आधार पर संवैधानिक प्रस्ताव के विरोध में अंत तक डटे रहे। मुस्लिम लीग का कहना था कि कांग्रेस मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हित में काम नहीं करती है। राजे-रजवाड़ों का दावा था

कि कांग्रेस का उनके नियंत्रण वाले भू–भाग पर कोई अधिकार नहीं है। तीसरी चुनौती तेज–तर्रार वकील और विचारक बी. आर. अम्बेडकर की तरफ़ से थी जिनका कहना था कि गाँधीजी और उनकी पार्टी निचली जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। लंदन में हुआ यह सम्मेलन किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका; इसलिए गाँधीजी को खाली हाथ लौटना पड़ा। भारत लौटने पर उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया। गांधीजी ब्रिटिश शासन् की इस षड्यंत्रकारी नीति को भली-भाँति समझ रहे थे। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए सभी भारतीय समुदाय को संगठित करना आवश्यक समझा था। गांधीजी ने देश की एकता को बनाये रखने के लिए उपर्युक्त सांप्रदायिक मांगों और ब्रिटिश षड्यंत्र के विरुद्ध यरवदा जेल में व्रत रखना शुरू कर दिया। इस प्रकार 'दलितों के लिए की गई पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था का गांधीजी ने विरोध किया और 20 सितंबर 1932 ई. को गांधीजी ने अनशन प्रारंभ कर दिया। गांधीजी इस समय पूना की यरवदा जेल में थे। कम्युनल एवार्ड की घोषणा होते ही पहले तो उन्होंने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर इसे बदलवाने का प्रयास किया, परंतु जब उन्होंने देखा कि यह निर्णय बदला नहीं जा रहा, तो उन्होंने अंतिम सांस तक व्रत रखने की घोषणा कर दी। 24 सितंबर, 1932 ई. को राजेंद्र प्रसाद व मदन मोहन मालवीय के प्रयासों से गांधीजी और अंबेडकर के मध्य पूना समझौता हुआ, जो बाद में पूना पैक्ट के नाम से मशहूर हुआ' (Kothari 2004:46) । इस समझौते में डॉ. अम्बेडकर को कम्युनल अवॉर्ड में मिले पृथक निर्वाचन के अधिकार को छोड़ना पड़ा तथा संयुक्त निर्वाचन पद्धति को स्वीकार करना पड़ा, परन्तु साथ ही कम्युनल अवार्ड से मिली 71 आरक्षित सीटों की बजाय पूना पैक्ट में आरक्षित सीटों की संख्या बढ़ा कर 148 करवा ली गई। साथ ही अछूतों के लिए प्रत्येक प्रांत में शिक्षा अनुदान में पर्याप्त राशि नियत करवाई और सरकारी नौकरियों में बिना किसी भेद-भाव के दलित वर्ग के लोगों की भर्ती को सुनिश्चित किया।

प्रेमचंद की दृष्टि देश-विदेश में चल रही इन हलचलों पर थी। प्रेमचंद गांधीजी को तत्कालीन भारत के लिए किसी उद्धारक से कम नहीं समझते थे। 19 दिसंबर 1932 ई. को 'जागरण' साप्ताहिक

पत्र में प्रकाशित 'महान तप' शीर्षक में उन्होंने गांधीजी द्वारा किए जा रहे महान तप की प्रशंसा करते हुए लिखा-

> कल यरवदा जेल में वह महान तप होगा, जिसकी कल्पना से ही रोमांच हो जाता है।....राष्ट्र पर इस समय जो संकट पड़ा हुआ है, उसका मोचन तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता था। राष्ट्र की नौका सांप्रदायिक भंवर में चक्कर खा रही थी। ....उसी समय यरवदा जेल की ऊंची चारदीवारियों को भेदती, सरकार की गोपन नीति को चीरती हुई तुम्हारी इस भीषण प्रतिज्ञा की आवाज, आकाशवाणी,सी– हमारे कानों में आती है, और सारा देश सचेत हो जाता है, हमारी मुरझाई हुई आशा फिर लहलहा जाती है, हमारी निर्जीव देह में जान पड़ जाती है। हमारी आंखे खुल जाती है और हम देखते हैं कि जब राष्ट्र ही न रहा तो स्वराज्य कहाँ। जब संस्कृति ही न रही, तो हमारा अस्तित्व ही कहाँ।(प्रेमचंद, सं "महान तप" 1932:437)

गांधीजी के विचार में पृथक निर्वाचन का अधिकार प्राप्त हो जाने से देश की जनता कभी भी ब्रिटिश शासन् के विरुद्ध संगठित नहीं हो सकती थी। देश की जनता को एकता के सूत्र में बांधने के लिए यह आवश्यक था कि देश का प्रत्येक भारतीय चाहे वह हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, दलित हो, सम्मिलित निर्वाचन के माध्यम से देश की एकता को सुदृढ़ करने की कोशिश करें । जिस प्रकार गांधीजी दलितों का उद्धार हिंदुओं के साथ रहकर ही समझते थे, उसी प्रकार प्रेमचंद भी गांधीजी की तरह 'दलितों के उद्धार में ही हिंदू जाति के उत्थान और उत्कर्ष का रहस्य छिपा हुआ देखते थे'(प्रेमचंद, सं "महान तप" 1932:438)। प्रेमचंद की दलितोद्धार संबंधी विचाराधारा गांधीजी की विचारधारा के ही अनुकूल थी। उन्होंने समाज में दलितों की महत्ता को मानव शरीर से जुड़े हुए पैरों से की। प्रेमचंद के विचार में बगैर पैर के जिस प्रकार मानव शरीर पूरा अपंग हो जाता है उसी प्रकार दलितों को समाज से अलग कर दिए जाने से भारतीय समाज भी कभी पनप नहीं सकता। यही कारण था कि प्रेमचंद भी

दलितों के उद्धार का सबसे उत्तम साधन सम्मिलित निर्वाचन के द्वारा ही संभव समझते थे। 19 दिसंबर 1932 ई. को उन्होंने 'जागरण' के संपादकीय में लिखा-

> भारतीय राष्ट्र का आधार मानव शरीर है जिसके मुंह, हाथ, उदर और पांव ये चार अंग हैं। इनमें से किसी एक के विच्छेद हो जाने से देह अपंग या निर्जीव हो जायेगी। हमारे शूद्र भाई इस देह रूपी राष्ट्र के पांव ही काट जाएं, तो देह की क्या गति होगी ?..... दलितों के उद्धार का सबसे उत्तम साधन है – सम्मिलित निर्वाचन। यही उनके उत्थान का मूलमंत्र है।.....महात्मा जी के इस वज्रनिर्घोष ने सारे देश में तहलका डाल दिया है। घरघर– में यही चर्चा है। समस्त देश एक स्वर से कह रहा है– हम अपने प्राणों के प्राण गांधी को, यों बलिवेदी पर न चढ़ने देंगे। हम अपने उन अछूत भाइयों को जो हमसे रूठ गए हैं, मनायेंगे, उनके चरणों पर गिरकर मनायेंगे। हमें विश्वास है डॉ. अम्बेडकर और मि. श्रीनिवासन् भी राष्ट्र की इस याचना को अस्वीकार न करेंगे।(प्रेमचंद, सं "महान तप" 1932:438-440)

प्रेमचंद दलितों को मानवता के आधार पर हिंदू समाज से समानता का व्यवहार किए जाने की मांग कर रहे थे। किसी भी व्यक्ति अथवा समुदाय को इस कारण अछूत समझना कि वह किसी के घर का मल-मूत्र साफ करता है । प्रेमचंद इसे मानवता के विरुद्ध समझते थे। अछूतों की दयनीय स्थिति के लिए प्रेमचंद हिंदू समाज के स्वार्थ को उत्तरदायी मानते थे। सदियों से स्वार्थ की चक्की में पिस रहे दलित समाज को समानता का अधिकार दिलाने वाले प्रेमचंद इस समुदाय को मानवता का पाठ पढ़ा रहे थे। 'जागरण' में उन्होंने लिखा था-

> पर, अभी कुछ ऐसे प्राणी भी संसार में हैं जिन्हें, अपने स्वार्थ के आगे कुछ नहीं सूझता।... अछूत क्या इसलिए अछूत है कि वे जनसमाज के स्वास्थ्य के लिए उनके घरों की सफाई करते हैं, उनकी सेवा करते हैं।....यदि अछूत उनके घर का मल-मूत्र

> साफ करते हैं, तो वे भी तो इस कार्य से वंचित नहीं हैं। वे भी तो रोज सुबह सबसे पहले यही काम करते हैं।...क्या कोई भी वर्णाश्रम अपने हृदय पर हाथ रखकर कह सकता है कि वास्तव में यह छुआछूत उसे धर्म की दृष्टि से उचित प्रतीत होती है ? नहीं, कोई भी यह नहीं कह सकता। एक स्वार्थ ही इसका कारण है। (प्रेमचंद, सं "हमारा कर्तव्य" 1932:442)

प्रेमचंद भी दलितों का उद्धार हिंदू जाति के साथ मिलकर ही संभव समझ रहे थे। उनकी यह मान्यता थी कि पृथक अधिकारों की लड़ाई में देश की एकता को कभी भी स्थापित नहीं किया जा सकता। देश की स्वाधीनता के लिए विभिन्न भारतीय समुदाय को एक प्लेटफार्म पर लाकर खड़ा करना आवश्यक था। यही कारण था कि प्रेमचंद ने अपनी पत्रकारिता में जहां एक तरफ दलित पृथक निर्वाचन का विरोध किया वहीं दूसरी तरफ दलितों के लिए नागपुर में बने अलग छात्रालय का भी विरोध किया। प्रेमचंद देश की शोषित जनता का उद्धार समाज के अन्य वर्गो से पृथक रहकर नहीं समझते थे। 5 दिसंबर 1932 ई. को 'हरिजन बालकों के लिए छात्रालय' नामक शीर्षक से उन्होंने इस छात्रवास का विरोध करते हुए लिखा था-

> नागपुर में हरिजन बालकों के लिए अलग एक छात्रालय बनाया गया है। इससे तो अछूतपन मिटेगा नहीं, और दृढ़ होगा। उन्हें तो साधारण छात्रावासों में बिना किसी विचार के स्थान मिलना चाहिए।(प्रेमचंद, सं "हरिजन बालकों के लिए छात्रावास" 1932:450)

पराधीन भारत में दलितों को अछूत समझने के कारण उन्हें मंदिर-प्रवेश की अनुमति प्रदान नहीं की जाती थी। कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों की बनी बनायी धार्मिक नीति ने अछूतों के मंदिर-प्रवेश को वर्जित करार दिया था। गांधीजी ने दलित समाज को मंदिर-प्रवेश को लेकर भी जगह-जगह अनशन किए और विभिन्न विचार सभाएँ स्थापित कीं। गांधीजी और अम्बेडकर के प्रयत्न से धीरे–धीरे हिंदू

समाज उन्हें बराबरी का दर्जा दिये जाने की माँग लेकर संगठित होने लगा था। लेकिन देश के कुछ ब्राह्मणों द्वारा गांधीजी के इस अनशन का विरोध भी किया जा रहा था। ब्राह्मणों की इस प्रतिक्रिया का विरोध प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता में करते हुए दिखाई देते हैं। मंदिर-प्रवेश को लेकर प्रेमचंद गांधीजी की विचारधारा का समर्थन कर रहे थे। तत्कालीन भारत में हरिजन मंदिर-प्रवेश को लेकर किये जा रहे विभिन्न आंदोलनों और उससे संबंधित प्रेमचंद के विचारों को निम्नलिखित दिये गये शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है– 'काशी का कलंक' (जागरण, 5 अक्टूबर 1932 ई.), 'हरिजन के मंदिर-प्रवेश का प्रश्न (जागरण,14 नवंबर 1932 ई.), 'अछूतों को मंदिर में जाने देना पाप है,' 'वायसराय की सेवा में डेपुटेशन जा रहा है', 'वर्णाश्रम स्वराज्य–संघ का आंदोलन' (21 नवम्बर 1932 ई.), 'धर्म भेद नहीं सिखाता,' 'मंदिर–प्रवेश ही इस समस्या को हल करेगा' (26 दिसंबर 1932 ई.), 'मंदिर प्रवेश और सरकार' (30 जनवरी 1933 ई.), 'मंदिर–प्रवेश और हरिजन' (29 मई 1933 ई.), 'क्या हम वास्तव में राष्ट्र–वादी हैं?', 'टके–पंथी पुजारी, पुरोहित और पंडे हिंदू जाति के कलंक हैं' (8 जनवरी 1934 ई.), 'बिहार और मंदिर सम्मेलन' (29 जनवरी 1934 ई.), 'काशी में मंदिर प्रवेश बिल का समर्थन' (19 मार्च 1933 ई.) इत्यादि।

ब्राह्मणों द्वारा किए जा रहे मंदिर-प्रवेश निषेध आंदोलन का उपहास उड़ाते हुए प्रेमचंद लिखते हैं-

> मंगल के दिन संध्या-समय की गर्द-भरी सड़कों पर वह दृश्य देखने में आया, जो हिंदू-जाति के लिए लज्जाजनक ही नहीं, हास्यापद भी था। दो-ढाई सौ संस्कृत पाठशालाओं के छात्र हाथों में लाल झंडे लिए, एक जुलूस के रूप में यह हांक लगाते चले आ रहे थे– 'अछूतों को मंदिरों में जाने देना, पाप है' । हाँक का पहला अंश एक आदमी के मुख से निकलता था, और दूसरा अंश सैकड़ों कंठों से कोरस के रूप में निकल रहा था, लेकिन उन आवाजों में उत्साह न था, भक्ति न थी, अनुराग न था। ऐसा जान पड़ता था जैसे

> कोई जीर्ण रोगी मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ कराह रहा है। (प्रेमचंद, सं "अछूतों को मंदिरों में जाने देना पाप है" 1932:447)

प्रेमचंद दलितों के सच्चे हिमायती थे। उन्होंने जिस प्रकार अपने कथा साहित्य में ब्राह्मणों की थोथी नैतिकता और धार्मिकता का पुरज़ोर विरोध किया, उसी प्रकार अपनी पत्रकारिता में भी उनको अपने आड़े हाथों लिया। भेद-भाव को बढ़ावा देने वाले और अछूतों के अधिकार में रुकावट बनने वाले ब्राह्मणों को वे आड़े हाथों लेते हैं। ढोंगी बाबाओं और पाखंडी ब्राह्मणों से संबंधित उनके लेख आक्रोश लिए हुए होते थे। आक्रोश भरे हुए उनके एक लेख का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जाता है-

> हमारे पास अंग्रेजी में छपा हुआ, वायसराय के नाम एक मेमोरियल, वर्णाश्रम संघ का, आया है। उस पर बड़ेबड़े– तर्क चूड़ामणियों और विद्यावाचस्पतियों के हस्ताक्षर हैं। वायसराय से फरियाद की गई है कि वह हिंदू मंदिरों की अछूतों से रक्षा करें। वाह रे मार्तंडों ! क्यों न हो, कितनी दूर की सूझी है।...आपका फतवा (तो) बड़ेबड़े– मसलों को हल कर दिया करता था और आज आप एक धर्म के विषय को लिए वायसराय के पास, कुत्तों की तरह दुम हिलाते हुए, चले जा रहे हैं।....हिंदू समाज की और राष्ट्र की जो वर्तमान अधोगति हो रही है, उसके ज़िम्मेदार आप ही जैसे लोग हैं।(प्रेमचंद, सं "अछूतों को मंदिरों में जाने देना पाप है" 1932:447)

देश की शोषित और पीड़ित जनता की हिमायत करने और उच्च जातियों की अनैतिकता का विरोध करने के कारण ही उन्हें 'घृणा का प्रचारक' कहा जाने लगा था।

दलितों के मंदिर-प्रवेश को लेकर केरल में 'गुरुवयूर सत्याग्रह' 1 नवम्बर, 1931 ई. में शुरू किया गया था। यह आंदोलन केरल के प्रसिद्ध 'गुरुवयूर मंदिर' में दलितों एवं पिछड़ों को प्रवेश दिलाने के अधिकार को लेकर के. केलप्पण के कहने पर 'केरल कांग्रेस कमेटी' द्वारा चलाया गया। 1 नवम्बर,1931 ई. को 'अखिल केरल मंदिर प्रवेश दिवस' के रूप में मनाया गया। पीत सुब्रह्मण्यम तिरुभावु के नेतृत्व

में 16 स्वयं सेवकों का एक दल 21 अक्टूबर को ही कानायूर से गुरुवयूर की ओर प्रस्थान कर चुका था। 1 नवम्बर को जब सत्याग्रही मंदिर के पूर्वी द्वार की ओर जा रहे थे, तब मंदिर के कर्मचारियों ने उन पर हमला कर दिया। पी. कृष्ण पिल्लै, ए. के. गोपालन गम्भीर रूप से घायल हुए। 21 दिसम्बर, 1932 ई. को सत्याग्रह का रूप और भी कठोर हो गया। के. केलप्पण आमरण अनशन पर बैठ गये। उन्होंने अपना अनशन तब तक समाप्त न करने की घोषणा की, जब तक मंदिर के दरवाज़े दलितों के लिए नहीं खुल जाते। केरल तथा देश के विभिन्न भागों में हिन्दुओं ने मंदिर के संरक्षक कालीकट के राजा जमोरिन से अनुरोध किया कि वे मंदिरों में दलितों और हरिजनों के प्रवेश की अनुमति दें। महात्मा गाँधी के अनुरोध पर के. केलप्पण ने 2 अक्टूबर, 1932 ई.को अनशन समाप्त कर दिया, परंतु संघर्ष पहले की ही तरह जारी रहा।

प्रेमचंद की दृष्टि देश में चल रही इन हलचलों से कब ओझल हो सकती थी। 5 दिसंबर, 1932 ई. को 'महात्मा जी का उपवास' में जहाँ एक तरफ उन्होंने श्री केलप्पन की प्रशंसा की, वहीं दूसरी ओर जमोरिन की खुलकर निंदा भी की। इस संबंध में वह लिखते हैं-

> श्री केलप्पण ने जिस साहस से गुरुवयूर के मंदिर को अछूतों के लिए खुलवा देने के लिए उपवास करने का निश्चय किया था, जिस साहस से वे कई दिन तक लगातार उपवास करते रहे, उसकी कितनी प्रशंसा की जावे, थोड़ी है। उस समय जमोरिन ने ज़िद्द कर मंदिर न खोलने में जो अहम्मन्यता तथा जड़ता दिखलाई थी, उसकी जितनी निंदा की जावे थोड़ी है।(प्रेमचंद, सं "महात्मा जी का उपावास" 1932:449-450)

अछूतों के मंदिर-प्रवेश को लेकर ब्राह्मणों द्वारा जो विरोध और प्रदर्शन किया जा रहा था उसका समर्थन ब्रिटिश सरकार भी कर रही थी। देश भर में हो रहे दलितोद्धार आंदोलनों के कारण हिंदू जनता दलितों के मंदिर–प्रवेश का समर्थन करने लगी थी। मद्रास इस दृष्टि से अधिक प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन कर रहा था। मद्रास की जनता ने श्रीयुत सुब्बरायन के माध्यम से तत्कालीन वायसराय से मद्रास कौंसिल में 'मंदिर-प्रवेशाधिकार' को लेकर प्रस्ताव रखने की मांग की थी। लेकिन ब्रिटिश सरकार

इस बिल को 'जनमत का अभाव' कहकर रद्द कर रही थी। अंग्रेज सरकार इस बिल को ब्रिटिश साम्राज्य के लिए हानिकारक समझ रही थी। ब्रिटिश सरकार 'अस्पृश्यता निवारण आंदोलन को कांग्रेस की एक राजनैतिक चाल समझती थी तथा उसके विचार में अस्पृश्यता का शोर मचाकर कांग्रेस अछूतों को अपने पंजे में कर, कौंसिलों में उनको अपने साथ रखने की चाल खेल रही है।' (प्रेमचंद, सं "मंदिर प्रवेश और सरकार" 1933:459) वहीं दूसरी ओर श्रीयुत रंगाअय्यर ने भी भारत में पनप रही जाति-पाति की बाधाओं को खत्म करने के उद्देश्य से मद्रास एसेंबली में 23 जनवरी, 1933 ई. को एक प्रस्ताव पेश करने की मांग की थी। तत्कालीन वायसराय ने इसे मंजूरी दे दी। प्रेमचंद ब्रिटिश सरकार की इस दोगली नीति के पीछे छिपे स्वार्थ को भलीभाँति समझ रहे थे। प्रेमचंद ने 30 जनवरी,1933 ई. को ब्रिटिश सरकार की इस दोगली नीति का विरोध करते हुए लिखा-

> वायसराय जानते हैं कि यदि वे मद्रास बिल (मंदिर–प्रवेशाधिकार बिल(को नामंजूर करेंगे तो उनको दुनिया भर बुरा कहेगा, यदि स्वीकार कर लेंगे तो कांग्रेस की चाल सफल हो जावेगी, इसीलिए रंगाअय्यर के निर्दोष बिल को इजाज़त दी गई है कि बदनामी से बची रहे।...सरकार यह देख रही है कि मंदिर–प्रवेश के संबंध में मूढ़ सनातनियों का एक भाग गांधीजी के तथा कांग्रेस के विरुद्ध होकर सूर्य पर थूकने का प्रयास कर रहा है।... अतएव सरकार सोचती है कि मंदिर–प्रवेश की समस्या में जड़वादियों का साथ देने से वह मूढ़ सनातनियों का सहयोग प्राप्त कर लेगी तथा इस प्रकार कांग्रेस में भी गहरी फूट पैदा हो जावेगी। (प्रेमचंद, सं "मंदिर प्रवेश और सरकार" 1933:460)

प्रेमचंद एक निर्भीक और ईमानदार पत्रकार की भाँति देश की पीड़ित और शोषित जनता के अधिकार के लिए जीवन भर प्रयास करते रहे। उनकी लेखनी किसी भी सांप्रदायिक नेता अथवा ब्रिटिश

सरकार के खौफ से नहीं रुकी। पत्रकार प्रेमचंद की पत्रकारिता की यही सबसे बड़ी प्रासंगिकता कही जा सकती है।

निष्कर्ष :

प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता के माध्यम से निरंतर दलितोत्थान का प्रयत्न कर रहे थे। प्रेमचंद हमेशा गरीब और शोषित जनता की वकालत करते थे। प्रेमचंद के दलितोद्धार संबंधी चिंतन पर गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। अम्बेडकर की चिंतनधारा उन्हें ज़्यादा प्रभावित नहीं कर सकी। प्रेमचंद भारत की सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट थे। ब्राह्मणों को लेकर उनके स्वर आक्रोश का रूप धारण कर लेते थे। दलितों की दयनीय स्थिति के लिए प्रेमचंद ने इन्हीं ब्राह्मणों की थोथी नैतिकता को उत्तरादायी ठहराया है।

ग्रंथ-सूची:

प्रेमचंद. "अछूतों को मंदिरों में जाने देना पाप है." जागरण 21 नवंबर,1932.

---."महान तप." जागरण 19 दिसंबर 1932.

---."महात्मा जी का उपवास." जागरण 5 दिसंबर, 1932.

---."मंदिर प्रवेश और सरकार." जागरण 30 जनवरी, 1933.

---."हमारा कर्तव्य." जागरण 26 सितंबर, 1932.

---."हरिजन बालकों के लिए छात्रालय." जागरण 5 दिसंबर, 1932.

शर्मा, रामविलास.प्रेमचंद और उनका युग.नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 1967.

Kothari, R. Caste in Indian Politics. Hyderabad:Orient Blackswan, 2004.

संपर्क-सूत्र :
हिंदी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
ई-मेइल: mahiraza619@gmail.com